[2003] 1 उम. नि. प. 163

विशेष निर्देश (2002 का संख्यांक 1) वाला मामला

28 अक्तूबर, 2002

मुख्य न्यायमूर्ति बी. एन. कृपाल, न्यायमूर्ति वी. एन. खरे, न्यायमूर्ति के. जी. बालकृष्णन्, न्यायमूर्ति अशोक भान और न्यायमूर्ति अरिजीत पसायत

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 174(1) – निर्वचन – उक्त अनुच्छेद के उपबंध विघटित विधानसभा को भी लागू होते हैं और इसके उपबंध आज्ञापक प्रकृति के हैं तथा इनका सम्बन्ध अस्तित्वशील और कृत्यशील विधानसभा से है न कि विघटित विधानसभा से ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 174(1)[सहपठित लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 15] – निर्वचन – संविधान और लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की स्कीम के अनुसार निर्वाचन विधानसभा के विघटन की तारीख से विधानसभा गठित किए जाने के छह मास के भीतर हो जाने चाहिएं ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 324 – निर्वचन – विधानसभा गठित किए जाने के लिए निर्वाचन कराना उक्त अनुच्छेद के अधीन निर्वाचन आयोग की अनन्य अधिकारिता के अन्तर्गत आता है और उक्त अनुच्छेद और अनुच्छेद 174 भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में प्रवर्तित होते हैं और यह अनुच्छेद किसी भी रूप में अनुच्छेद 174(1) के अध्यधीन नहीं है।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 324 – निर्वाचन आयोग को स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन कराने के लिए राज्य सभी सुसंगत पहलुओं पर विचार करते हुए स्थिति का वस्तुनिष्ठ रूप से आकलन करके यथासंभव शीघ्र निर्वाचन कराने चाहिएं और विधि-व्यवस्था या लोक अव्यवस्था के कारण निर्वाचन आस्थगित नहीं किए जाने चाहिएं ।

विचाराधीन निर्देश के तथ्यों के अनुसार गुजरात राज्य की विधानसभा जो मार्च, 1998 में गठित हुई थी का पांच वर्ष का कार्यकाल 18 मार्च, 2003 को समाप्त होना था । तारीख 19 जुलाई, 2002 को मुख्य मंत्री की सलाह पर गुजरात राज्य के राज्यपाल ने विधानसभा का विघटन कर दिया । विघटित विधानसभा का अन्तिम अधिवेशन तारीख 3 अप्रैल, 2002 को हुआ था । विधानसभा के तत्काल पश्चात्, निर्वाचन आयोग ने नई विधानसभा गठित करने के लिए नए सिरे से निर्वाचन कराए जाने के कदम उठाए । तथापि, निर्वाचन आयोग ने अपने तारीख 16 अगस्त, 2002 के आदेश द्वारा यह अभिज्ञान करते हुए कि अनुच्छेद 174(1) आज्ञापक प्रकृति का है और विघटित विधानसभा को लागू होता है और यह कि नवीन विधानसभा गठित किए जाने के लिए निर्वाचन विघटित विधानसभा के अन्तिम अधिवेशन के छह मास के भीतर अवश्य हो जाने चाहिएं यह मत व्यक्त किया कि वह तारीख 3 अक्तूबर, 2002 जो कि विघटित विधानसभा के अन्तिम अधिवेशन से छह मास की समाप्ति की अन्तिम तारीख है से पूर्व निर्वाचन कराने की स्थिति में नहीं है । इस प्रसंग में भारत के राष्ट्रपति महोदय ने संविधान के अनुच्छेद 143 के खण्ड (1) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए निम्न प्रश्नों पर उच्चतम न्यायालय की राय प्राप्त करने की दृष्टि से इन्हें उच्चतम न्यायालय को निर्दिष्ट किया :–

> "(i) क्या अनुच्छेद 174 विधानसभा के निर्वाचनों के कार्यक्रम के संबंध में अनुच्छेद 324 के अधीन भारत के निर्वाचन आयोग के विनिश्चय के अध्यधीन है ?
>
> (ii) क्या निर्वाचन आयोग इस आधार वाक्य के आधार पर किसी विधानसभा के निर्वाचन के लिए ऐसा कार्यक्रम बना सकता है जिससे अनुच्छेद 174 के आदेश का उल्लंघन होता हो और क्या राष्ट्रपति द्वारा अनुच्छेद 356 का अवलंब लेकर इसका प्रति समाधान किया जा सकता है ?
>
> (iii) क्या भारत का निर्वाचन आयोग स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन सुनिश्चित करने के लिए संघ और राज्य के सभी अपेक्षित संसाधनों को अपने अधीन करके संविधान के अनुच्छेद 174 के आदेश के अधीन अपने कर्तव्य को पूरा करने के लिए बाध्य है ?"

उच्चतम न्यायालय द्वारा बहुमत का निर्णय माननीय मुख्य न्यायमूर्ति बी. एन. कृपाल की अध्यक्षता में माननीय न्यायमूर्ति वी.एन. खरे द्वारा सुनाया गया । एक अन्य निर्णय माननीय न्यायमूर्ति के. जी. बालकृष्णन् और एक अंन्य निर्णय माननीय न्यायमूर्ति अरिजीत पसायत द्वारा सुनाया गया । उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्दिष्ट प्रश्नों का उत्तर देते हुए,

अभिनिर्धारित – माननीय उच्चतम न्यायालय के बहुमत का निर्णय (माननीय न्यायमूर्ति वी. एन. खरे) :

संविधान, 1950 का अनुच्छेद 174(1) का न्यायालय द्वारा निर्वचन किए जाने के पश्चात् हम पहले ही यह अभिनर्धारित कर चुके हैं कि इस अनुच्छेद में विघटित विधानसभा के सत्र की अंतिम बैठक की तारीख से छह मास के भीतर निर्वाचन कराए जाने के लिए किसी परिसीमा काल का उपबंध नहीं किया गया है । लोक प्रतिनिधित्व

अधिनियम, 1951 की धारा 15 में यह उपबंध किया गया है कि नई विधानसभा गठित करने के प्रयोजन के लिए, साधारण निर्वाचन वर्तमान विधानसभा की अस्तित्वावधि के अवसान पर या उसके विघटन पर किया जाएगा । इस धारा की उपधारा (2) में यह उपबंध किया गया है कि नई विधानसभा का गठन करने के लिए राज्यपाल ऐसी तारीख या तारीखों, जिसकी सिफारिश निर्वाचन आयोग द्वारा की जाए, राज्य के शासकीय राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना द्वारा राज्य में के सब निर्वाचन क्षेत्रों से यह अपेक्षा करेगा कि वे इस अधिनियम और तद्धीन बनाए गए नियमों और किए गए आदेशों के उपबंधों के अनुसार सदस्य निर्वाचित करें । इस अधिनियम की धारा 15 की उपधारा (2) के परन्तुक में यह उपबंध किया गया है कि जहां वर्तमान विधानसभा के विघटन पर होने से अन्यथा निर्वाचन होता है वहां ऐसी कोई अधिसूचना उस तारीख से, जिसको सभा की अस्तित्वावधि का अवसान संविधान, 1950 का अनुच्छेद 172 के खंड (1) के उपबंधों के अधीन होता हो, पूर्व के छह मास से पहले जारी नहीं की जाएगी । उपर्युक्त उपबंधों में किसी विद्यमान विधानसभा का समय से पहले विघटन किए जाने की दशा में नई विधानसभा का गठन करने के लिए निर्वाचन कराने के लिए किसी परिसीमा काल का उपबंध नहीं किया गया है सिवाय इसके कि ऐसी विधानसभा के अवसान की सामान्य अवधि की तारीख से छह मास पहले अधिसूचना जारी करके निर्वाचन प्रक्रिया आरंभ की जा सकती है । इस प्रकार प्रश्न यह उद्भूत हुआ है कि क्या संविधान निर्माताओं ने समय से पहले विघटन की दशा में नई विधानसभा का गठन करने के लिए निर्वाचन कराने के लिए ऐसी किसी अवधि का उपबंध न करके जो लोप किया है या इसे अनदेखा किया है ऐसा उन्होंने क्या जानबूझकर किया है और संविधान में इस बाबत उन्होंने उपबंध नहीं किए हैं । इस प्रयोजन के लिए भारत के संविधान को अधिनियमित करने से पहले के विधायी विकास और सांविधानिक बहसों पर अवश्य विचार करना चाहिए । संविधान, 1950 का अनुच्छेद 324 अधिनियमित किया गया जिससे निर्वाचन का अधीक्षण, निदेशन, नियंत्रण कराने का कार्य कार्यपालिका के हाथों में नहीं रहा अपितु इस कार्य को एक स्वशासी प्राधिकरण अर्थात् निर्वाचन आयोग को सुपुर्द कर दिया गया । ऐसा प्रतीत होता है कि निर्वाचनों से संबंधित पूरे विषय को निर्वाचन आयोग के सुपुर्द कर दिया गया और यह निष्कर्ष निकाला गया कि यदि समय से पहले विधानसभा का विघटन कर दिया जाता है तब नई विधानसभा का गठन करने के लिए नए निर्वाचन कराने के लिए किसी परिसीमा काल का उपबंध न करने का कोई परिणाम नहीं होगा । यह विनिश्चय जान-बूझकर किया गया था । तथापि, इस बाबत सावधानी बरती गई कि यह पूरा विषय निर्वाचन आयोग के हाथों में न आ जाए और इसलिए संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची-1 की प्रविष्टि 72 के साथ पठित अनुच्छेद 327 के अधीन संसद को, संसद के प्रत्येक सदन या किसी राज्य के विधानमंडल के सदन या प्रत्येक सदन के लिए निर्वाचनों से संबंधित या संसक्त सभी विषयों के संबंध में जिनके अंतर्गत निर्वाचक नामावली तैयार कराना भी है, का उपबंध करने के लिए सशक्त किया गया है । सूची-2 की प्रविष्टि 37 के साथ पठित अनुच्छेद 328 के अधीन भी राज्यों के लिए जहां तक संसद इस निमित्त उपबंध नहीं करती है वहां तक किसी राज्य का विधानमंडल विधि द्वारा उस राज्य के विधानमंडल के सदन या प्रत्येक सदन के लिए निर्वाचनों से संबंधित या संसक्त सभी विषयों के संबंध में उपबंध कर सकेगा । इस प्रकार संसद को, संसद या राज्य विधानमंडल के निर्वाचनों को कराने से संबंधित विषयों की बाबत विधि बनाने के लिए सशक्त किया गया है । इससे निर्वाचन आयोग की सर्वांगीण शक्ति प्रभावित नहीं होती है । इस विषय को दृष्टिगत करते हुए अनुच्छेद 324(1) के अधीन निर्वाचन आयोग में निर्वाचन के अधीक्षण, निदेशन, नियंत्रण और संचालन की साधारण शक्ति यद्यपि निहित की गई है फिर भी यह शक्ति, यथास्थिति, संसद या राज्य विधानमंडल द्वारा बनाई गई विधि के अध्यधीन है और यह संविधान के उपबंधों के अध्यधीन है । इसलिए इस बाबत कोई संदेह नहीं है कि अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण की शक्ति, यथास्थिति, संसद या राज्य विधानमंडल में से किसी भी द्वारा बनाई गई विधि के अध्यधीन है किन्तु अनुच्छेद 324 के अधीन निर्वाचन आयोग की सर्वांगीण शक्ति का ऐसी विधि अतिक्रमण नहीं कर सकती है । ऐसा प्रतीत होता है कि निर्वाचन आयोग द्वारा अपने आदेश में संविधान के अनुच्छेद 174(1) का जिस प्रकार निर्वचन किया गया है उस निर्वचन में निर्वाचन आयोग ने विगत परिपाटियों को अपनाया है जिनके अधीन विघटित सदन की अंतिम बैठक के छह मास के भीतर नई विधानसभा का गठन करने के लिए निर्वाचन कराए जाते रहे हैं । ऐसा भी प्रतीत होता है कि निर्वाचन आयोग द्वारा अनुच्छेद 356 को

लागू करने के संबंध में जो अनावश्यक सलाह दी गई है वह उसने पूर्ण सत्यनिष्ठा से दी है, यद्यपि अब न्यायालय द्वारा जिस प्रकार अनुच्छेद 174(1) का जो निर्वचन किया गया है उसके अनुसार न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि इस प्रकार इस अनुच्छेद का निर्वचन करना गलत है । मामले को दृष्टिगत करते हुए और अनुच्छेद 174 के निर्वचन की बाबत न्यायालय ने जो मत व्यक्त किया है उस आधार पर निर्वाचन आयोग के आदेश के संदर्भ में, जिसके कारण यह निर्देश उत्पन्न हुआ है, अनुच्छेद 356 को लागू किए जाने के प्रश्न पर और आगे विचार करने की आवश्यकता नहीं है । यह प्रश्न इस उपधारणा के आधार पर उत्पन्न हुआ है कि अनुच्छेद 174(1) विघटित विधानसभा को लागू होता है । न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि संविधान के अनुच्छेद 174(1) में यह उपबंध किया गया है कि एक सत्र की अंतिम बैठक और आगामी सत्र की प्रथम बैठक के लिए नियत तारीख के बीच छह मास का अंतर नहीं होगा । यह उपबंध आज्ञापक प्रकृति का है और इसका संबंध किसी अस्तित्वशील और कार्यशील विधानसभा से है न कि किसी ऐसी विघटित विधानसभा से जिसका अस्तित्व समाप्त हो चुका है और जो विद्यमान नहीं रही है । इसके अतिरिक्त, अनुच्छेद 174(1) का संबंध न तो निर्वाचनों से है और न ही इसमें विधानसभा का गठन करने के लिए निर्वाचन कराने के लिए किसी अधिकतम समय सीमा का उपबंध किया गया है । संविधान के अनुच्छेद 324 के अधीन निर्वाचन आयोग के अनन्य अधिकार क्षेत्र में विधानसभा का गठन करने के लिए निर्वाचनों का अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण तथा निर्वाचक नामावलियों को तैयार कराना और निर्वाचन कराना है । इस मामले को दृष्टिगत करते हुए अनुच्छेद 174(1) और अनुच्छेद 324 अलग-अलग क्षेत्रों में प्रवर्तित होते हैं और न तो अनुच्छेद 174(1) अनुच्छेद 324 के अध्यधीन है और न ही अनुच्छेद 324 संविधान के अनुच्छेद 174(1) के अध्यधीन है । यह प्रश्न भी इस उपधारणा के आधार पर उत्पन्न हुआ है कि अनुच्छेद 174(1) किसी विघटित सदन को भी लागू होता है । पहले ही अनुच्छेद 174(1) का निर्वचन किए जाने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित कर चुका है कि उक्त अनुच्छेद किसी विघटित विधानसभा को लागू नहीं होता है । परिणामतः निर्वाचन आयोग द्वारा किसी विधानसभा के निर्वाचनों के लिए कार्यक्रम तैयार करने के कारण अनुच्छेद 174(1) के आदेश का उल्लंघन नहीं हुआ है । मामले को इस प्रकार दृष्टिगत करते हुए अनुच्छेद 174 के उपबंधों का उल्लंघन करके अनुच्छेद 356 को लागू करने से संबंधित प्रश्न में कोई सार नहीं रहा है और इसलिए अनुच्छेद 356 को लागू करने के संबंध में विचार करने की आवश्यकता नहीं है । यह प्रश्न भी इस उपधारणा के आधार पर उत्पन्न हुआ है कि किसी विघटित विधानसभा को भी अनुच्छेद 174(1) के उपबंध लागू होते हैं । प्रश्न सं. (i) के संबंध में न्यायालय ने जो उत्तर दिया है उसको ध्यान में रखते हुए न्यायालय पहले ही यह अभिनिर्धारित कर चुका है कि अनुच्छेद 174(1) न तो समय से पहले विघटित विधानसभा को लागू होता है और न ही इसमें निर्वाचनों के संबंध में उपबंध किए गए हैं और इसलिए संविधान के अनुच्छेद 174(1) के आदेश को कार्यान्वित करने के लिए निर्वाचन आयोग से संबंधित प्रश्न उत्पन्न ही नहीं हुआ है । अनुच्छेद 324 के अधीन निर्वाचन आयोग का यह कर्तव्य और जिम्मेदारी है कि वह शीघ्रता से स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन कराए । निर्वाचन आयोग द्वारा समय पर निर्वाचन कराने के संबंध में सभी प्रयास किए जाने चाहिएं । साधारणतया विधि-व्यवस्था और लोक अव्यवस्था के कारण निर्वाचनों को मुल्तवी नहीं किया जाना चाहिए और सभी संबंधित व्यक्तियों का यह कर्तव्य और उत्तरदायित्व है कि वे स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन कराने के लिए निर्वाचन आयोग की सहायता और सहयोग करें । (पैरा 72, 73, 77, 83, 85, 86 और 87)

माननीय न्यायमूर्ति के. जी. बालकृष्णन् :

इसलिए यह प्रश्न उत्पन्न हो सकता है कि यदि अनुच्छेद 174 किसी विघटित विधानसभा को लागू नहीं होता है तो क्या निर्वाचन आयोग अनिश्चितकाल के लिए निर्वाचन मुल्तवी कर सकता है जिससे कि लोकतंत्रात्मक सरकार का प्रयोजन ही विफल हो जाए ? क्या संविधान में या लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 में निर्वाचन कराने के लिए कोई समय-सीमा विहित करने का आदेश किया गया है या नहीं ? स्पष्ट रूप से न तो संविधान में और न ही लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के अधीन विधानसभा की अवधि समाप्त हो जाने के पश्चात् या समय से पहले विधानसभा का विघटन किए जाने के पश्चात् या अन्यथा निर्वाचन कराए जाने के लिए कोई समय-सीमा विहित नहीं

की गई है । लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 15(2) के परन्तुक में यह कथन किया गया है कि जहां वर्तमान विधानसभा के विघटन पर होने से अन्यथा साधारण निर्वाचन होता है वहां ऐसी कोई अधिसूचना उस तारीख से जिसको सभा की अस्तित्वावधि का अवसान अनुच्छेद 83 के खंड (2) के उपबंधों के अधीन होता है, पूर्व के छह मास से पहले जारी नहीं की जाएगी । यदि विधानसभा का विघटन कर दिया गया है तो निर्वाचन आयोग शीघ्रतापूर्वक नई विधानसभा का गठन करने के लिए निर्वाचन कराने के संबंध में आवश्यक कदम उठाएगा । लोकतंत्रात्मक सरकार केवल तभी अस्तित्व में रह सकती है जब देश का शासन निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा किया जाए । निर्वाचन आयोग द्वारा यदि इस संबंध में कोई विलम्ब किया जाता है तो यह बहुत महत्वपूर्ण है और निर्वाचन आयोग का यह सांविधानिक कर्तव्य है कि वह तुरन्त विधानसभा के विघटन के पश्चात् निर्वाचन कराने के संबंध में कदम उठाए । संविधान के अनुच्छेद 324 के अधीन निर्वाचन आयोग को व्यापक शक्तियां दी गई हैं और समय-समय पर कई बार इस न्यायालय ने निर्वाचन आयोग को निहित की गई शक्तियों और कर्तव्यों की सीमा का उल्लेख किया है । विभिन्न राजनीतिक दलों की ओर से हाजिर होने वाले विभिन्न काउंसेलों द्वारा यह दलील दी गई है कि यदि निर्वाचन आयोग किसी भी बहाने से अनिश्चितकाल के लिए निर्वाचन मुल्तवी कर देता है तब क्या स्थिति होगी । इस प्रकार यह प्रश्न उद्भूत हुआ था कि "रक्षकों की रक्षा कौन करे" । निर्वाचन आयोग में निर्वाचन कार्यक्रम का विनिश्चय करने की शक्ति निहित की गई है । वह केवल सांविधानिक उपबंधों के अनुसार कार्य कर सकता है । नई विधानसभा का निर्वाचन करने के लिए निर्वाचन प्रक्रिया ऐसी विधानसभा के विघटन के तुरन्त पश्चात् आरंभ हो जानी चाहिए । कई मामलों में ऐसा हो सकता है कि जहां निर्वाचक नामावली अद्यतन न हो और ऐसी दशा में निर्वाचन आयोग को निर्वाचक नामावली अद्यतन करने की शक्ति है और निर्वाचक नामावली को इस प्रकार अद्यतन करने के लिए उसके द्वारा जो समय लिया जाएगा वह समय युक्तिसंगत होना चाहिए । सामान्य रूप से निर्वाचन आयोग को अधिसूचना जारी करने, नामांकन करने और ऐसी अन्य प्रक्रियाओं के लिए भी समय की आवश्यकता होती है जिससे कि वह उचित रूप से निर्वाचन करा सके । कई बार ऐसी परिस्थितियां हो सकती हैं कि निर्वाचन आयोग कुछ प्राकृतिक विपदाओं के कारण स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन कराने की स्थिति में न हो । ऐसी परिस्थिति के अधीन भी निर्वाचन आयोग को अपने अधीन सभी संसाधनों का उपयोग करके शीघ्रता से निर्वाचन कराने का प्रयास करना चाहिए । सरकार के विभिन्न विभागों, जिसके अंतर्गत सेना और अर्द्ध-सैनिक बल भी हैं, की सहायता लेकर अपनी सभी कार्रवाइयों को समन्वित करने के संबंध में निर्वाचन आयोग को पर्याप्त शक्तियां प्रदत्त की गई हैं । जब मुख्यमंत्री सलाह पर राज्यपाल द्वारा विधानसभा का विघटन कर दिया जाता है तब स्वाभाविक रूप से मुख्यमंत्री या उसके राजनीतिक दल को निर्वाचक मंडल से नया जनादेश प्राप्त करना होता है । निर्वाचन आयोग का यह कर्तव्य है कि वह नए सिरे से निर्वाचन कराए जिससे कि शीघ्रतापूर्वक लोकतांत्रिक रूप से निर्वाचित सरकार बन सके और यदि निर्वाचन आयोग का आशय इस स्वीकृत उद्देश्य को विफल करने का है जिसकी वजह से कोई निर्वाचित सरकार शासन में नहीं आ सकती है तो निर्वाचन आयोग के ऐसे विनिश्चय को निश्चित रूप से इस न्यायालय के समक्ष तब चुनौती दी जा सकती है यदि निर्वाचन आयोग का ऐसा विनिश्चय अन्यायोचित, अयुक्तियुक्त या असंगत कारणों के आधार पर आधारित है और यदि निर्वाचन आयोग का विनिश्चय इन आधारों के कारण दोषपूर्ण हो गया है तब न्यायालय निर्वाचन कराने के लिए उपयुक्त निदेश दे सकता है । अनुच्छेद 174 और अनुच्छेद 324 अलग-अलग क्षेत्रों में लागू होते हैं । अनुच्छेद 174 विघटित विधानसभाओं को लागू नहीं होता है । विधानसभा के निर्वाचन के कार्यक्रम को इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए नियत किया जाना चाहिए कि लोकतांत्रिक निर्वाचित सरकार अस्तित्व में आ जाए और विधानसभा के विघटन के तुरन्त पश्चात् निर्वाचन प्रक्रिया आरंभ हो जानी चाहिए । यद्यपि, कब स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन कराए जाएं इसका विनिश्चय करने का प्राधिकार निर्वाचन आयोग का है किन्तु उसका विनिश्चय न्यायसंगत और युक्तियुक्त होना चाहिए और सभी सुसंगत परिस्थितियों पर विचार करने के पश्चात् उसे इस संबंध में निष्कर्ष निकालना चाहिए । यदि अयुक्तियुक्त आधारों पर निर्वाचन मुल्तवी का विनिश्चय किया जाता है, तो ऐसा विनिश्चय लोकतांत्रिक सरकार के लिए एक अभिशाप है और पारंपरिक स्वीकृत आधारों पर ऐसा विनिश्चय न्यायिक पुनर्विलोकन के अध्यधीन है । (पैरा 105, 106 और 108)

माननीय न्यायमूर्ति अरिजीत पसायत :

निर्दिष्ट प्रश्नों का उत्तर इस प्रकार दिया जाता है – जहां तक दो सत्रों के बीच की कालावधि का अस्तित्वशील विधानसभाओं न कि विघटित विधानसभाओं से संबंध है, अनुच्छेद 174 के उपबंध आज्ञापक प्रकृति के हैं । अनुच्छेद 174 और अनुच्छेद 324 विभिन्न क्षेत्रों में प्रवर्तित होते हैं । अनुच्छेद 174 में निर्वाचनों का उल्लेख नहीं है जोकि अनुच्छेद 324 के अधीन निर्वाचन आयोग का प्राथमिक कृत्य है । अतः एक का दूसरे के समक्ष झुकने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है । ऊपर वर्णित रीति में दोनों को समरसतापूर्वक कार्य करना चाहिए । अनुच्छेद 174 का संबंध विघटित विधानसभा से नहीं है । इसी भांति अनुच्छेद 85 के अधीन लोकसभा के संबंध में भी यही स्थिति है । मात्र इस कारण कि अनुच्छेद 174 के अधीन नियत समय कार्यक्रम नहीं अपनाया जा सकता है, यह अपने में अनुच्छेद 356 को प्रवर्तन का आधार नहीं हो सकता है । चूंकि अनुच्छेद 174 में निर्वाचन की चर्चा नहीं है, निर्वाचन आयुक्त द्वारा केन्द्र या राज्य सरकारों से सहायता, मदद या सहयोग लेने या निर्वाचन कराए जाने के लिए उनके संसाधनों को लेने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है । इसके प्रतिकूल अनुच्छेद 324 के प्रभावी प्रवर्तन के लिए निर्वाचन आयोग स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन कराया जाना सुनिश्चित करने के लिए ऐसा कर सकता है । इस प्रश्न का कि क्या स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन कराया जाना संभव है या नहीं आकलन सभी सुसंगत पहलुओं पर विचार करते हुए निर्वाचन आयोग द्वारा वस्तुनिष्ठ रूप में किया जाना चाहिए । निर्वाचन कराए जाने के प्रयास होने चाहिएं न कि निर्वाचन कराया जाना आस्थगित करने के । (पैरा 159)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2001]	(2001) 7 एस. सी. सी. 126 : **एस. आर. चौधरी** बनाम **पंजाब राज्य और अन्य** ;	156
[1998]	(1998) 7 एस. सी. सी. 7391 : **न्यायाधीशों की नियुक्ति वाले मामले में (1998 का विशेष निर्देश संख्यांक 1);**	3
[1995]	(1995) 4 एस. सी. सी. 61 : **टी. एन. शेषन** बनाम **भारत संघ और अन्य** ;	117
[1995]	(1995) सप्ली. 3 एस. सी. सी. 379 : **भारत का निर्वाचन आयोग** बनाम **तमिलनाडु राज्य और अन्य** ;	158
[1995]	(1995) सप्ली. 3 एस. सी. सी. 643 : **भारत का निर्वाचन आयोग** बनाम **भारत संघ और अन्य** ;	158
[1994]	(1994) 6 एस. सी. सी. 360 : **डा. एम. इस्माइल फारुकी और अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य** ;	3,120
[1994]	[1994] 3 उम. नि. प. 343 = (1994) 3 एस. सी. सी. 1 : **एस. आर. बोम्मई** बनाम **भारत संघ** ;	157
[1993]	(1993) 4 एस. सी. सी. 175 : **दिग्विजय मोटे** बनाम **भारत संघ और अन्य** ;	155
[1993]	(1993) सप्ली. 1 एस. सी. सी. 413 : **कावेरी जल विवाद अधिकरण** ;	3
[1993]	(1993) सप्ली. 1 एस. सी. सी. 96(ii) : **कावेरी जल विवाद अधिकरण** ;	120

[1993]	ए. आई. आर. 1993 एस. सी. 1804 : **आर.सी. पौडयाल** बनाम **भारत संघ और अन्य ;**	141
[1992]	ए. आई. आर. 1992 इलाहाबाद 1 : **अरुण कुमार राय चौधरी** बनाम **भारत संघ ;**	157
[1990]	ए. आई. आर. 1990 एस. सी. 781 : **मैसर्स गुडईयर इण्डिया लिमिटेड** बनाम **हरियाणा राज्य और एक अन्य ;**	140
[1990]	ए.आई.आर. 1990 एस.सी. 1927 : **सिंथेटिक्स एण्ड केमिकल्स लिमिटेड** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ;**	140
[1986]	[1986] 2 उम. नि. प. 17 = (1985) 4 एस. सी. सी. 628 = ए. आई. आर. 1986 एस. सी. 111 : **कन्हैया लाल उमर** बनाम **आर. के. त्रिवेदी और अन्य ;**	77,117,128
[1984]	[1984] 3 उम. नि. प. 1097 = (1984) 2 एस. सी. सी. 656 : **ए.सी. जोस** बनाम **साइवन पिल्लई और अन्य ;**	77,79,128
[1984]	[1984] 2 उम. नि. प. 661 = [1984] 2 एस. सी. आर. 495 : **आर.एस. नायक** बनाम **ए.आर. अंतुले ;**	8,18
[1984]	[1984] 3 एस. सी. आर. 554 : **भारत का निर्वाचन आयोग** बनाम **हरियाणा राज्य ;**	158
[1979]	[1979] 4 उम. नि. प. 1061 = (1979) 1 एस. सी. सी. 380 : **विशेष न्यायालय विधेयक, 1978 वाले मामले में (1978 का विशेष निर्देश संख्यांक 1) ;**	3
[1978]	[1978] 4 उम. नि. प. 847 = (1978) 1 एस. सी. सी. 404 = ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 851 : **मोहिन्दर सिंह गिल** बनाम **मुख्य निर्वाचन आयुक्त ;**	77, 78, 117, 128
[1976]	[1976] 1 उम. नि. प. 1 = (1975) सप्ली. 1 एस. सी. सी. 1 : **इन्दिरा नेहरू गांधी** बनाम **राज नारायण ;**	81
[1975]	[1975] 1 एस. सी. आर. 504 : **1974 का विशेष निर्देश सं. 1 ;**	153
[1974]	[1974] 2 उम. नि. प. 1303 = (1974) 1 एस. सी. सी. 717 : **अहमदाबाद सेण्ट जेवियर्स कालेज सोसाइटी और एक अन्य** बनाम **गुजरात राज्य और अन्य ;**	3
[1974]	[1974] 2 उम. नि. प. 1806 = (1974) 2 एस. सी. सी. 33 : **राष्ट्रपतीय निर्वाचन के मामले में (1974 का निर्देश संख्यांक 1) ;**	3,10
[1973]	[1973] 2 उम. नि. प. 159 = (1973) 4 एस. सी. सी. 225 : **केशवानंद भारती आदि** बनाम **केरल राज्य और एक अन्य आदि ;**	117
[1973]	ए. आई. आर. 1973 फेडरल कोर्ट 13 : **द एलोकेशन ऑफ लैंड्स एण्ड बिल्डिंग्स इन ए चीफ कमीशनर्स प्रोविन्स ;**	121

[1972]	(1972) 4 एस. सी. सी. 733 : **के. एन. राजगोपाल** बनाम **तिरु एम. करुणानिधि ;**	157
[1965]	[1965] 1 एस. सी. आर. 96 : **केशव सिंह, 1964 का विशेष निर्देश संख्यांक 1 वाला मामला ;**	3
[1965]	ए. आई. आर. 1965 केरल 229 : **के. के. आबू** बनाम **भारत संघ ;**	145
[1965]	[1965] 1 एस. सी. आर. 413 : **केशव सिंह वाला मामला ;**	124
[1962]	[1962] सप्ली. 1 एस. सी. आर. 753 : **पुरुषोतमन नम्बुदिरी** बनाम **केरल राज्य ;**	142
[1959]	[1959] एस. सी. आर. 995 : **केरल शिक्षा विधेयक, 1957 वाला मामला ;**	3
[1958]	ए. आई. आर. 1958 एस. सी. 956 = [1959] एस. सी. आर. 995 : **केरल शिक्षा विधेयक ;**	122
[1944]	1944 एफ. सी. आर. 317 : **लेवी ऑफ एस्टेट ड्यूटी (सम्पदा शुल्क का उद्ग्रहण) ;**	7
[1944]	ए. आई. आर. 1944 फेडरल कोर्ट 73 : **लैवी ऑफ एस्टेट ड्यूटी ;**	122
[1943]	1943 एफ. सी. आर. 20 : **एलोकेशन ऑफ लैंड एण्ड बिल्डिंग (भूमि और भवनों का आबंटन) ;**	7
[1917]	(1917) 245 यू. एस. 418 एम. 425 : **टाउने** बनाम **एसनर ;**	138
[1826]	(1826) 3 एडम्स 210, पृष्ठ 216 : **ब्रैट** बनाम **ब्रैट ।**	151

परामर्श अधिकारिता : 2002 का निर्देश संख्यांक 1.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 143(1) के अधीन निर्देश ।

पक्षकारों की ओर से — सर्वश्री हरीश एन. साल्वे (महा-सॉलीसिटर), किरीट एन.रावल (अपर महा-सॉलीसिटर), के. के. वेणुगोपाल, अरुण जेटली, डा. राजीव धवन, जितेन्द्र शर्मा, कपिल सिब्बल, ए. शरण, मिलन के. बनर्जी, एम.सी. भंडारे, डी.एन. द्विवेदी, गोपाल सुब्रह्मण्यम्, पी.पी. राव, डा. ए.एम. सिंघवी, अश्विनी कुमार, के. परासरन, कैलाश वासदेव, विजय बहुगुणा, यतीन ओझा, ओ.पी. शर्मा, राम जेठमलानी, टी.एम. मोहम्मद यूसुफ (वरिष्ठ अधिवक्ता), प्रीतेश कपूर, सुश्री मीनाक्षी सखारडानाडे, श्री सिद्धार्थ चौधरी, सुश्री अपराजिता सिंह,

सुश्री गायत्री गोस्वामी, सर्वश्री पी. परमेश्वरन, आर.एन.पोद्दार, एस.मुरलीधर, एस.के. मेंहदीरत्ता, श्रेयश जयसिम्हा, सुश्री बीना गुप्ता, वनिता भार्गव, राखी राय, दिव्या राय झा, सर्वश्री एच.के. पुरी, एस.के. पुरी, उज्ज्वल बनर्जी, सुश्री अनिंदिता गुप्ता, सर्वश्री बी. के.पाल, पी. एन. झा, ई.अनिल मित्तल, दयान कृष्णन्, रणजी थामस, अरुण भारद्वाज, गौतम नारायण, प्रणब कुमार मलिक, शैल कुमार द्विवेदी, सुश्री मधु शरण, सर्वश्री अमित कुमार, अमित आनन्द तिवारी, समीर अली खान, आशीष तिवारी, इरशाद अहमद, सुश्री कृष्णा शर्मा, आशा जी. नायर, सर्वश्री अनिल श्रीवास्तव, ज्योति दत्त, जी. प्रभाकर, सुश्री कामिनी जायसवाल, सर्वश्री साकेत सिंह, कुमार राजेश सिंह, बी.बी.सिंह, प्रकाश श्रीवास्तव, आई.सी. पाण्डेय, आर.एम.शर्मा, सुश्री ए. सुभाषिनी, श्री कमल त्रिवेदी, अपर महाधिवक्ता, गुजरात, सुश्री हेमन्तिका वाही, श्री जे.पी. ढांडा, सुश्री राज रानी ढांडा, सर्वश्री सुन्दर खत्री, नरेश के. शर्मा, अशोक माथुर, राजेश पाठक, अनीश सुहरावारी, राज शेखर राव, के.आर. शशिप्रभु, जॉन मैथ्यू, संजय आर. हेगडे, सत्या मिता, अशोक कुमार पाण्डेय, जी. बालाजी, धीरेन्द्र पाण्डेय, आर.के. मेहता, सुश्री एम. शारदा, सुमन कुकरेती, सर्वश्री आर.एस. जेना, आर.एस. सुरी, जगजीत सिंह छाबड़ा, के.एन. मधुसूदनन, सुश्री सुनीता हजारिका, सर्वश्री जय बसु, प्रशांत चन्द्र सेन, एस.एस. शिंदे, वी.एन.रघुपति, कार्तिक सिंह, रंजन मुखर्जी, के.एच. नोबीन सिंह, एम. गिरीश कुमार, सतीश के. अग्निहोत्री, के.सी. कौशिक, रोहित के. सिंह, डब्ल्यू.ए. नोमानी, सुरेन उप्पल, विक्रम मेहता, प्रदीप तिवारी, अनिल के. पाण्डेय, संजय के. शांडिल्य, सुश्री वी.डी. खन्ना, श्री वी.जी. प्रगासम, एस.एम.मेहता, महाधिवक्ता, राजस्थान, सुश्री भारती उपाध्याय, सर्वश्री सुशील टेकरीवाल, जावेद एम. राव, ए. मारियारपुथम, गोपाल सिंह, राहुल सिंह, राजीव महापात्र, पी.एन.रामालिंगम् वी. बालाजी, आर.सी. वर्मा, मुकेश वर्मा, विवेक विश्नोई, सुश्री रचना श्रीवास्तव, सर्वश्री कमलेन्द्र मिश्र, संजय विसेन, तारा चन्द्र शर्मा, राजीवशर्मा, सुश्री नीलम शर्मा, सर्वश्री अजय शर्मा, रुपेश कुमार, सुश्री कीर्तिसिंह, सर्वश्री डी.एस. माहरा, एस. वसीम, ए. कादरी, जन कल्याण दास, सुश्री बीना महावन, सर्वश्री एस.उदय कुमार सागर, प्रशांत पी. और सुश्री मीना सी.आर. राय

न्यायालय ने निम्नलिखित राय व्यक्त की है :–

न्यायमूर्ति वी. एन. खरे :

गुजरात राज्य की विघटित विधानसभा का गठन मार्च, 1998 में किया था और तारीख 18 मार्च, 2003 को इस विधानसभा की पांच वर्ष की अवधि समाप्त होनी थी । मुख्यमंत्री की सलाह पर तारीख 19 जुलाई, 2002 को गुजरात के राज्यपाल ने विधानसभा विघटित कर दी थी । विघटित विधानसभा की अंतिम बैठक तारीख 3 अप्रैल, 2002 को हुई थी । विधानसभा के विघटन तुरंत पश्चात् भारत निर्वाचन आयोग ने नई विधानसभा का गठन करने के लिए नए निर्वाचन कराने के संबंध में कदम उठाए थे । तथापि, निर्वाचन आयोग ने तारीख 16 अगस्त, 2002 के अपने आदेश में इस बात को अभिस्वीकार करते हुए कि अनुच्छेद 174(1) आज्ञापक है और यह अनुच्छेद विघटित विधानसभा को लागू होता है और यह कि नई विधानसभा का गठन करने के लिए निर्वाचन विघटित विधानसभा के अंतिम सत्र के छह मास के भीतर कराए जाने चाहिएं, किन्तु निर्वाचन आयोग का यह मत था कि वह तारीख 3 अक्तूबर, 2002

अर्थात् वह तारीख जोकि विघटित विधानसभा की अंतिम बैठक से छह मास की अवधि समाप्त होने की अंतिम तारीख है, से पहले निर्वाचन कराने की स्थिति में नहीं है । इस संदर्भ में भारत के संविधान के अनुच्छेद 143 के खंड (1) द्वारा प्रदत्त की गई शक्तियों का प्रयोग करते हुए भारत के राष्ट्रपति ने तारीख 19 अगस्त, 2002 के अपने आदेश द्वारा उच्चतम न्यायालय की राय जानने के लिए तीन प्रश्नों को निर्देशित किया है जोकि निम्नलिखित है :–

"गुजरात राज्य की विधानसभा का विघटन तारीख 19 जुलाई, 2002 को कर दिया गया था और यह विघटन इस विधानसभा की तारीख 18 मार्च, 2003 को उसकी सामान्य अवधि पूरी होने से पहले किया गया है ;

संविधान के अनुच्छेद 174(1) में यह उपबंध किया गया है कि विधानसभा की अंतिम बैठक के बीच एक सत्र की अंतिम बैठक और आगामी सत्र की प्रथम बैठक के लिए नियत तारीख के बीच छह मास का अंतर नहीं होगा ;

निर्वाचन आयोग ने भी यह उल्लेख किया है कि अनुच्छेद 174 में यह आदेश किया गया है कि सदन के विघटन के पश्चात् भी प्रत्येक छह मास की अवधि में विधानसभा की बैठक होगी और निरंतर रूप से निर्वाचन आयोग का यह मत रहा है कि सामान्य रूप से अनुच्छेद 174 द्वारा यथा अनुध्यात प्रत्येक छह मास की अवधि में, यहां तक कि जब विधानसभा को विघटित कर दिया जाता है तब भी बैठक होनी चाहिए ;

लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 15 के अधीन विधानसभा की अवधि समाप्त हो जाने या इसके विघटन पर राज्यपाल ऐसी तारीख या तारीखों को, जिसकी सिफारिश निर्वाचन आयोग द्वारा की जाए, राज्य के शासकीय राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना द्वारा राज्य में से सब निर्वाचन क्षेत्रों से अपेक्षा करेगा कि वे सदस्य निर्वाचित करे ;

गुजरात राज्य के विधानसभा की अंतिम बैठक तारीख 3 अप्रैल, 2002 को हुई थी और इस प्रकार नए सिरे से ~~गठित~~ विधानसभा की बैठक तारीख 3 अक्तूबर, 2002 को या उससे पहले होनी चाहिए ;

निर्वाचन आयोग ने तारीख 16 अगस्त, 2002 के अपने आदेश सं. 464/ गुजरात-वि.स./2002 द्वारा गुजरात राज्य के लिए नई विधानसभा का गठन करने के लिए साधारण निर्वाचन कराने के लिए किसी तारीख की सिफारिश नहीं की है और यह मत व्यक्त किया है कि आयोग नवम्बर- दिसम्बर, 2002 में राज्य विधानसभा के साधारण निर्वाचन कराने के लिए उचित कार्यक्रम विरचित करने के संबंध में विचार करेगा । उक्त आदेश की प्रतिलिपि इसके साथ-साथ संलग्न है ;

भारत निर्वाचन आयोग के उपर्युक्त विनिश्चय के कारण भारत के संविधान के अनुच्छेद 174(1) के अधीन यथा उपबंधित छह मास की नियत अवधि के भीतर नई विधानसभा अस्तित्व में नहीं आ सकती है और इस प्रकार विधानसभा की बैठक नहीं हो सकती है ;

निर्वाचन आयोग ने यह अभिनिर्धारित किया है कि विद्यमान परिस्थिति में अनुच्छेद 174(1) के उपबंधों के अननुपालन का यह अर्थ होगा कि संविधान के अनुच्छेद 356(1) के अर्थान्तर्गत संविधान के उपबंधों के अनुसार राज्य सरकार कार्य नहीं कर सकती, इसलिए राष्ट्रपति को हस्तक्षेप करना चाहिए;

भारत निर्वाचन आयोग के उक्त आदेश की सांविधानिक वैध्यता की बाबत संदेह उत्पन्न हुआ है क्योंकि निर्वाचन आयोग के इस आदेश से संविधान के अनुच्छेद 174(1) के अधीन परिकल्पित आज्ञापक अपेक्षा का अननुपालन होगा जिसके परिणामस्वरूप राज्य विधानसभा की दो बैठकों के बीच छह मास से अधिक का अंतर हो जाएगा ;

इसमें ऊपर जो कथन किया गया है उसको ध्यान में रखते हुए मुझे यह प्रतीत होता है कि इसमें इसके पश्चात् उपवर्णित विधि के जो प्रश्न उद्भूत हुए हैं जो ऐसी प्रकृति का है और ऐसे व्यापक महत्व का है उस पर भारत के उच्चतम न्यायालय की राय प्राप्त करना समीचीन है ।

इसलिए, मैं, ए. पी. जे. अब्दुल कलाम, भारत का राष्ट्रपति, संविधान के अनुच्छेद 143 के खंड (1) के अधीन प्रदत्त की गई शक्तियों का प्रयोग करते हुए निम्नलिखित प्रश्नों को भारत के उच्चतम न्यायालय को उन पर विचार करने और रिपोर्ट देने के लिए निर्देशित करता हूं, अर्थात् :–

(i) क्या अनुच्छेद 174 विधानसभा के निर्वाचनों के कार्यक्रम के संबंध में अनुच्छेद 324 के अधीन भारत के निर्वाचन आयोग के विनिश्चय के अध्यधीन है ?

(ii) क्या निर्वाचन आयोग इस आधार वाक्य के आधार पर किसी विधानसभा के निर्वाचन के लिए ऐसा कार्यक्रम बना सकता है जिससे अनुच्छेद 174 के आदेश का उल्लंघन होता हो और क्या राष्ट्रपति द्वारा अनुच्छेद 356 का अवलंब लेकर इसका प्रतिसमाधान किया जा सकता है ?

(iii) क्या भारत का निर्वाचन आयोग स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन सुनिश्चित करने के लिए संघ और राज्य के सभी अपेक्षित संसाधनों को अपने अधीन करके संविधान के अनुच्छेद 174 के आदेश के अधीन अपने कर्तव्य को पूरा करने के लिए बाध्य है ?"

इस मामले की सुनवाई करने से पहले इस निर्देश की सुनवाई करने वाली न्यायपीठ द्वारा यह स्पष्ट कर दिया गया था कि वह न तो गुजरात में निर्वाचन किए जाने के संदर्भ में और न ही निर्वाचन आयोग के आदेश से उद्भूत होने वाले तथ्यों के प्रश्नों के संदर्भ में कोई उत्तर नहीं देगा और वह उसे निर्देशित विधि के प्रश्नों तक ही अपनी वह राय सीमित रखेगा ।

2. जब इस निर्देश पर सुनवाई आरंभ की गई थी तब निर्वाचन आयोग की ओर से हाजिर होने वाले वरिष्ठ विद्वान् काउंसेल श्री के. के. वेणुगोपाल, कई राष्ट्रीय राजनीतिक दलों और विभिन्न राज्यों के काउंसेलों द्वारा यह आक्षेप किया गया था कि इस निर्देश का उत्तर देने की आवश्यकता नहीं है और अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित आधारों पर इस निर्देश का उत्तर दिए बिना भी लौटा दिया जाना चाहिए :–

(क) यह कि इस निर्देश में जो विवाद्य उठाए गए हैं उनके संबंध में अनुच्छेद 324-329 के अधीन निर्वाचन के सभी पहलुओं के संबंध में निर्वाचन आयोग की जो सर्वांगीण और व्याप्त शक्तियां हैं उनकी बाबत उच्चतम न्यायालय के पूर्व निर्णयों द्वारा पहले ही विनिश्चय या अवधारण किया जा चुका है ;

(ख) यदि उच्चतम न्यायालय उक्त प्रश्नों पर फिर से विचार करता है तो उसे अनुच्छेद 143 के अधीन परामर्श अधिकारिता को अपीली अधिकारिता में तब्दील करना होगा जोकि अननुज्ञेय है ;

(ग) यदि अनुच्छेद 174 अनुच्छेद 324 पर अभिभावी है तब प्रश्न सं. 3 अनावश्यक है । यदि प्रश्न सं.1 का उत्तर सकारात्मक दिया जाता है तब स्वतः प्रश्न सं. 3 का उत्तर मिल जाएगा । यदि प्रश्न सं. 3 के अंतिम भाग में जो प्रश्न उत्पन्न हुआ है, उस प्रश्न का प्रभाव यह है कि क्या निर्वाचन आयोग स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन सुनिश्चित करने के लिए आबद्ध है या नहीं इस प्रश्न का उत्तर स्वतःसिद्ध और स्पष्ट है तथा किसी राष्ट्रपतीय निर्देश में इस प्रश्न का उत्तर दिया जाना पूर्ण रूप से अनावश्यक है ;

(घ) प्रश्न सं. 2 सारहीन है और इस पर विचार करने की भी आवश्यकता नहीं है तथा इस प्रश्न को अनुतरित लौटा दिया जाना चाहिए ;

(ङ.) भारत संघ द्वारा ऐसा कोई वचनबंध नहीं किया गया है कि वह इस न्यायालय की सलाह से आबद्ध होंगे और इसलिए इस निर्देश का उत्तर दिए जाने की आवश्यकता नहीं है ;

(च) यह निर्देश इस विधिक आधार वाक्य के आधार पर किया गया है कि अनुच्छेद 174 समय-समय पर निर्वाचन कराए जाने के संबंध में लागू होता है और निर्वाचन आयोग को इस अनुच्छेद के अधीन यह आज्ञा दी गई है कि वह विघटित विधानसभा के अंतिम सत्र से छह मास की अवधि के भीतर निर्वाचन कराए और इसलिए, इस न्यायालय को इस निर्देश का उत्तर दिए बिना वापस कर देना चाहिए; और

(छ) तारीख 16 अगस्त, 2002 को निर्वाचन आयोग के आदेश को चुनौती देने के लिए यह निर्देश किया गया है जोकि अनुच्छेद 143 के अधीन किए गए निर्देश के लिए अनुचित है ।

3. उपर्युक्त प्रतिपादनों के समर्थन में विद्वान काउंसेल ने निम्नलिखित विनिश्चयों का अवलम्ब लिया है : **कावेरी जल विवाद अधिकरण**[1], **केशव सिंह, 1964 का विशेष निर्देश संख्यांक 1 वाला मामला**[2], **विशेष न्यायालय विधेयक, 1978 वाले मामले (1978 का विशेष निर्देश संख्यांक 1)**[3] **में, न्यायाधीशों की नियुक्ति वाले मामले में (1998 का विशेष निर्देश संख्यांक 1)**[4], **अहमदाबाद सेण्ट जेवियर्स कालेज सोसाइटी और एक अन्य** बनाम **गुजरात राज्य और अन्य**[5], **राष्ट्रपतीय निर्वाचन के मामले में (1974 का निर्देश संख्यांक 1)**[6], **केरल शिक्षा विधेयक, 1957 वाला मामला**[7], और **डा. एम. इस्माइल फारुकी और अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य**[8] ।

4. केरल शिक्षा विधेयक, 1957 (ऊपर) वाले मामले में यह दलील दी गई थी कि चूंकि विधानसभा में विधेयक पुरःस्थापित किया गया था और अनुच्छेद 143 के अधीन निर्देश किया गया है और इस निर्देश को विधायी मंजूरी नहीं मिली है इसलिए इस निर्देश का उत्तर दिए जाने की आवश्यकता नहीं है । उक्त दलील पर विचार करते समय इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि अनुच्छेद 143 के अधीन उच्चतम न्यायालय से यह अपेक्षा की गई है कि वह राष्ट्रपति को ऐसे किसी प्रश्न के संबंध में सलाह देगा जो प्रश्न उत्पन्न हुआ है या उसके उत्पन्न होने की संभावना है ।

5. विशेष न्यायालय विधेयक, 1978 (ऊपर) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि उच्चतम न्यायालय से जिस प्रश्न के संबंध में राय मांगी नहीं है उसकी बाबत यह आवश्यक नहीं है कि वास्तव में वह प्रश्न उत्पन्न हुआ हो । राष्ट्रपति इसके लिए सक्षम है कि वह किसी पूर्व प्रक्रम पर भी निदेश कर सकते हैं अर्थात् ऐसे प्रक्रम पर जब राष्ट्रपति का यह समाधान हो जाए कि ऐसे किसी प्रश्न के उत्पन्न होने की संभावना है – मुख्य न्यायमूर्ति चन्द्रचूड़ ने इस निर्णय के पैरा 20 में निम्नलिखित मत व्यक्त किया है :–

> "20. अनुच्छेद 143(1) की भाषा व्यापक है जिसमें यह उपबंध है कि यदि राष्ट्रपति को यह प्रतीत हो कि विधि या तथ्यों का कोई प्रश्न उत्पन्न हुआ है तथा उसके उत्पन्न होने की संभावना है और यदि वह प्रश्न इस प्रकार का और ऐसे सार्वजनिक महत्व का है कि उस पर उच्चतम न्यायालय की राय प्राप्त करना समीचीन है तो ऐसा प्रश्न राष्ट्रपति द्वारा उच्चतम न्यायालय के विचार के लिए निर्देशित किया जा सकता है । यद्यपि अनुच्छेद 143(1) के अधीन किए गए निर्देश में से किसी में भी इस न्यायालय को तथ्य के प्रश्न निर्देशित नहीं किए गए थे तथापि वह अनुच्छेद तथ्य के प्रश्नों को भी निर्देशित करने के लिए राष्ट्रपति को शक्ति प्रदान करता है परन्तु यह तब जब कि अनुच्छेद की शर्तें पूरी हो जाएं । यह आवश्यक नहीं है कि जिस प्रश्न पर उच्चतम न्यायालय की राय मांगी गई है वह वास्तव में उत्पन्न हो गया हो । राष्ट्रपति अनुच्छेद 143(1) के अधीन निर्देश पूर्ववर्ती प्रक्रम पर, अर्थात् उस प्रक्रम पर भी कर सकता है जब राष्ट्रपति का यह समाधान हो गया है कि प्रश्न उत्पन्न होने की संभावना है । इस समाधान का विनिश्चय आवश्यक रूप से राष्ट्रपति को करना कि क्या प्रश्न उत्पन्न हुआ है या उसके उत्पन्न होने की संभावना है और क्या वह इस प्रकार का और ऐसे सार्वजनिक महत्व का है कि उस पर उच्चतम न्यायालय की राय प्राप्त करना समीचीन है । संविधान के अनुच्छेद 143(1) के

---

[1] (1993) सप्ली. 1 एस. सी. सी. 96.

[2] [1965] 1 एस. सी. आर. 413.

[3] [1979] 4 उम. नि. प. 1061 = (1979) 1 एस. सी. सी. 380.

[4] (1998) 7 एस. सी. सी. 7391.

[5] [1974] 2 उम. नि. प. 1303 = (1974) 1 एस. सी. सी. 717.

[6] [1974] 2 उम. नि. प. 1806 = (1974) 2 एस. सी. सी. 33.

[7] [1959] एस. सी. आर. 995.

[8] (1994) 6 एस. सी. सी. 360.

अधीन उच्चतम न्यायालय का स्पष्ट कृत्य उस प्रश्न पर विचार करना, जिस पर राष्ट्रपति ने निर्देश किया है, और राष्ट्रपति को अपनी राय भेजना है परन्तु यह तब जब कि उस प्रश्न का निर्णय किया जा सकता है और उसका विनिश्चय करने की इस न्यायालय को शक्ति है । यदि प्रश्न विरचित करने की रीति के कारण या किसी अन्य समुचित कारण से न्यायालय का यह विचार हो कि प्रश्न का उत्तर देना समुचित या संभव नहीं है तो वह उसका उत्तर देने में आने वाली बाधाओं का उल्लेख करते हुए निर्देश को वापस करने का हकदार है । इस न्यायालय का निर्देश का उत्तर देने से इनकार करने का अधिकार इस अर्थ में अनुच्छेद 143 के खंड (1) और (2) में प्रयुक्त शब्दावली की मात्र भिन्नता से उत्पन्न नहीं होता कि (1) में यह उपबंध है कि न्यायालय अपने को निर्देशित प्रश्न पर अपनी राय राष्ट्रपति को प्रतिवेदित "कर सकेगा" जब कि खंड (2) में यह उपबंध है कि न्यायालय उस प्रश्न पर अपनी राय राष्ट्रपति को प्रतिवेदित "करेगा" । खंड (2) के अधीन उत्पन्न विषयों में भी, यद्यपि इस निर्देश में यह प्रश्न उत्पन्न नहीं हुआ है, न्यायालय द्वारा उस दशा में निर्देश का उत्तर दिए बिना वापस कर दिया जाना न्यायोचित होगा, जब विधिमान्य कारण से उसका यह निष्कर्ष है कि प्रश्न का उत्तर नहीं दिया जा सकता । ये प्रारंभिक मताभिव्यक्तियां करके हम ऊपर उपवर्णित दलीलों पर विचार करेंगे ।"

6. **केशव सिंह, विशेष निर्देश (1964 का संख्यांक 1)** (ऊपर) वाले मामले में न्यायालय की ओर से निर्णय सुनाते हुए मुख्य न्यायमूर्ति गजेन्द्र गडकर ने यह राय व्यक्त की थी कि अनुच्छेद 143(1) के शब्द इतने व्यापक हैं कि इसके अधीन राष्ट्रपति को यदि यह प्रतीत होता है कि विधि या तथ्य का कोई ऐसा प्रश्न उत्पन्न हुआ है या उत्पन्न होने की संभावना है जो ऐसी प्रकृति का और ऐसे व्यापक महत्व का है कि जिसपर उच्चतम न्यायालय की राय प्राप्त करना समीचीन है तो वह उस प्रश्न को इस न्यायालय की राय जानने के लिए उससे परामर्श करने के लिए न्यायालय को निर्देशित कर सकेंगे ।

7. **एलोकेशन ऑफ लैंड एण्ड बिल्डिंग (भूमि और भवनों का आबंटन)**[1] वाले मामले में मुख्य न्यायमूर्ति गावर ने यह मत व्यक्त किया था "हमें यह संदेह है कि गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट(भारत सरकार अधिनियम) की धारा 213 के अधीन राय देने से कोई उपयोगी प्रयोजन सिद्ध होगा । इस धारा के निबंधनों के अधीन इस न्यायालय पर कोई बाध्यता अधिरोपित नहीं की गई है यद्यपि हम अच्छे कारण के बिना किसी निर्देश को स्वीकार करने के सदैव अनिच्छुक होते हैं; और इस निर्देश को स्वीकार करने से हमारे समक्ष दो कठिनाइयां उत्पन्न हो जाएंगी । पहली कठिनाई यह होगी कि यदि न्यायालय सरकार की दलीलों को सुनने के पश्चात् उसके पक्ष में निर्णय देता है तो शीघ्र या बाद में इस संबंध में हक का प्रश्न उद्भूत हो जाएगा और सरकार प्रश्नगत भूमि में से कुछ भूमि का व्ययन प्राइवेट व्यक्तियों को कर देगी और स्पष्ट रूप से एक सरकार के विरुद्ध दूसरी सरकार द्वारा अधिनियम की धारा 204(1) के अधीन जो कार्रवाई की जाएगी वे इस न्यायालय के निर्णय के अधीन रहते हुए की जाएगी ।"

8. **लेवी ऑफ एस्टेट ड्यूटी(सम्पदा शुल्क का उद्ग्रहण)**[2] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि भारत सरकार अधिनियम की धारा 213 के अधीन गवर्नर जनरल को विधि के ऐसे प्रश्नों के संबंध में निर्देश करने के लिए सशक्त किया गया है "जिनके उत्पन्न होने की संभावना है" ।

9. उपर्युक्त विनिश्चयों से यह स्पष्ट है कि यदि जिन प्रश्नों को निर्देशित किया गया है उन प्रश्नों के भविष्य में उद्भूत होने की संभावना है या ऐसे प्रश्न व्यापक महत्व के हैं या पहले निर्देशित किए गए प्रश्नों में इस न्यायालय द्वारा ऐसे प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया गया है तो यह न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 143(1) के अधीन राष्ट्रपति द्वारा दिए गए निर्देश का उत्तर/परामर्श अपनी अधिकारिता के अंतर्गत दे सकता है ।

10. विद्यमान मामले में हमने यह पाया है कि निर्देशित किए गए प्रश्नों में से एक प्रश्न यह है कि क्या अनुच्छेद 174(1) में पूर्व विधानसभा का समय पूर्व विघटन किए जाने की दशा में विधानसभा का गठन करने के लिए नए

---

[1] 1943 एफ. सी. आर. 20.

[2] 1944 एफ. सी. आर. 317.

निर्वाचन किए जाने के लिए कोई परिसीमा अवधि विहित की गई है या नहीं । राष्ट्रपतीय निर्देश में अंतर्विष्ट परिवर्णन से स्पष्ट रूप से यह प्रदर्शित होता है कि यह निर्देश तारीख 16 अगस्त, 2002 के निर्वाचन आयोग के आदेश से उत्पन्न हुआ है । उक्त आदेश में निर्वाचन आयोग ने यह स्वीकार किया है कि अनुच्छेद 174(1) के अधीन विधानसभा की एक बैठक और दूसरी बैठक के बीच छह मास से अधिक अंतराल होनी चाहिए, बेशक विधानसभा का विघटन कर दिया गया हो । यह निर्देश इस आधार वाक्य के आधार पर किया गया है कि निर्वाचन आयोग के आदेश के अनुसार राज्य में विद्यमान स्थिति का अवधारण करने के पश्चात् आयोग की यह राय है कि संविधान के अनुच्छेद 174(1) के अधीन यथाउपबंधित नियत छह मास की अवधि के भीतर नई विधानसभा अस्तित्व में नहीं आ सकती है । इसके अतिरिक्त निर्वाचन आयोग के आदेश में अनुच्छेद 356 को लागू किए जाने की बाबत संदेह उत्पन्न हुआ है । **राष्ट्रपतीय निर्वाचन**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अनुच्छेद 143(1) के अधीन परामर्श अधिकारिता के अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत यह न्यायालय तथ्यों से संबंधित विवादित प्रश्नों पर विचार नहीं कर सकता है । हमने पहले ही निर्वाचन आयोग के आदेश से उत्पन्न होने वाले तथ्यों के संबंध में विचार करने से इनकार कर दिया है । किन्तु, जिस विधिक आधार वाक्य के आधार पर ये प्रश्न उत्पन्न हुए हैं वे व्यापक महत्व के हैं और भविष्य में इन प्रश्नों के उत्पन्न होने की संभावना है । प्रश्न ये हैं कि क्या अनुच्छेद 174(1) आज्ञापक है और क्या इस अनुच्छेद को किसी विघटित विधानसभा पर लागू किया जा सकता है या नहीं और यह कि क्या असाधारण परिस्थितियों के अधीन अनुच्छेद 324 के अधीन अनुच्छेद 174(1) है या नहीं और यह कि यदि अनुच्छेद 174 का पालन नहीं किया जाता है तो क्या इसका अर्थ यह होगा कि राज्य सरकार संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाई जा सकती है और उस दशा में या अनुच्छेद 356 का प्रयोग किया जाना चाहिए या नहीं, ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनके भविष्य में न केवल उत्पन्न होने की संभावना है अपितु ये प्रश्न व्यापक महत्व के हैं । यह निर्विवाद है कि निर्देशित प्रश्नों के संबंध में प्रत्यक्ष रूप से इस न्यायालय का कोई विनिश्चय नहीं है और इसके अतिरिक्त भारत के राष्ट्रपति के मन में संविधान के अनुच्छेद 174(1) के निर्वचन की बाबत संदेह उत्पन्न हुआ है । ऐसी परिस्थितियों के अधीन इस निर्देश का उत्तर दिया जाना अनिवार्य है इसलिए हम, इस संबंध में जो आक्षेप किए गए हैं उन्हें नामंजूर करते हैं और इस निर्देश का उत्तर देते हैं ।

प्रश्न सं. 1

11. क्या अनुच्छेद 174 विधानसभा के निर्वाचन के कार्यक्रम की बाबत अनुच्छेद 324 के अधीन भारत निर्वाचन आयोग के विनिश्चय के अध्यधीन है ?

12. यह प्रयास किया गया है कि उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर नकारात्मक दिया जाए इसलिए अन्य बातों के साथ-साथ भारत संघ की ओर से हरीश एन. सांल्वे, भारत के महा-सालिसीटर, राष्ट्रीय राजनीतिक दलों के एक दल की ओर से श्री अरुण जेटली, ज्येष्ठ काउंसेल तथा राज्यों में से एक राज्य की ओर से श्री किरीट एन. रावल, अपर महा-सालिसीटर द्वारा निम्नलिखित दलीलें दी गई हैं :–

(क) यह कि संविधान का अनुच्छेद 174(1) में का उपबंध यह है कि एक सत्र की अंतिम बैठक और आगामी सत्र की प्रथम बैठक के लिए नियत तारीख के बीच 6 मास का अंतर नहीं होगा, यह उपबंध आज्ञापक प्रकृति का है तथा यह उपबंध तब लागू होता है जब राज्यपाल ने या तो सदनों में से किसी सदन का सत्रावसान कर दिया हो या विधानसभा का विघटन कर दिया हो ;

(ख) अनुच्छेद 174(2) के अधीन राज्यपाल को विधानसभा का सत्रावसान या विघटन करने के लिए सशक्त हो गया है और अनुच्छेद 174(1) में अंतराल की बाबत कोई अपवाद नहीं किया गया है बेशक ऐसा अंतराल अनुच्छेद 174(2) के अधीन विधानसभा के सदन का सत्रावसान या विघटन को विचार में लाए बिना किया गया हो ;

---

[1] (1974) 2 एस. सी. सी. 33.

(ग) अनुच्छेद 174 का सही निर्वचन अनुच्छेद 174(1) का आदेश है और यह विघटित विधानसभा को भी लागू होता है। ऐसे निर्वचन से लोकतंत्र की रक्षा होगी और इसलिए जब भी कभी किसी विधानसभा का समय से पहले विघटन किया जाता है तब निर्वाचन आयोग को अनुच्छेद 174 के अधीन दिए गए आदेश के अंतर्गत नए निर्वाचन कराने के लिए तारीख नियत करनी होती है ;

(घ) अनुकल्पतः यह दलील दी गई थी कि जहां अनुच्छेद 174 (1) के अधीन दी गई आदेश का पालन नहीं किया जा सकता है उस दशा में इसका यह अर्थ नहीं होगा कि यह आदेश निदेशात्मक प्रकृति का है; और

(ङ) विधानसभा के विघटन के तुरन्त पश्चात् निर्वाचन कराया जाना इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि विधानसभा द्वारा धन विधेयकों की बाबत मंजूरी भी प्राप्त करनी होती है।

13. अन्य राष्ट्रीय राजनीतिक दलों की ओर से सर्वश्री कपिल सिब्बल, राजीव धवन और पी.एन. पुरी द्वारा, राजनीतिक दलों की ओर से श्री ए. शरण द्वारा तथा अन्य राज्यों की ओर से सर्वश्री के.आर. परासरन, राम जेठमलानी, पी.पी. राव, मिलन बनर्जी, अश्विनी कुमार, एम.सी. भंडारे, देवेन्द्र द्विवेदी, ए.एम. सिंघवी, गोपाल सुब्रामणियम और वी. बहुगुणा द्वारा यह दलील दी गई है कि अनुच्छेद 174(1) न तो विघटित विधानसभा को लागू होता है और न ही इस अनुच्छेद में समय से पहले किसी विधानसभा का विघटन किए जाने की दशा में नए निर्वाचन कराने के लिए छह मास के परिसीमा काल के बारे में उपबंध किया गया है। इन राजनीतिक दलों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान काउंसेलों के अनुसार न तो संविधान में इस बाबत कोई उपबंध किया गया और न ही लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम में ऐसा कोई उपबंध किया गया है कि समय से पहले विधानसभा या लोकसभा का विघटन किए जाने की दशा में, यथास्थिति, नई विधानसभा या नई लोकसभा का गठन करने के लिए निर्वाचन कराने की कोई वास्तविक परिसीमा है।

14. राजनीतिक दलों की ओर से विद्वान काउंसेलों द्वारा जो दलीलें दी गई हैं उनके आधार पर विचार के लिए पहला प्रश्न यह उद्भूत होता है कि क्या अनुच्छेद 174(1) विघटित विधानसभा को लागू होता है या नहीं ?

15. अनुच्छेद 174 को मात्र पढ़ने से यह दर्शित होता है कि इस अनुच्छेद में यह उपबंध किया गया है कि एक सत्र की अंतिम बैठक और आगामी सत्र के लिए नियत की गई प्रथम बैठक के बीच छह मास का अंतराल नहीं होगा। इस अनुच्छेद में समय से पहले विधानसभा विघटित कर दिए जाने की दशा में नए निर्वाचन कराने के लिए परिसीमा की किसी अवधि की बाबत कोई उपबंध नहीं किया गया है। यह सत्य है कि संविधान के आरंभ होने के पश्चात् यह परिपाटी रही है कि जब भी कभी समय से पहले संसद या विधानसभा का विघटन किया गया है तब, यथास्थिति, नई विधानसभा या नई संसद का गठन करने के लिए निर्वाचन विघटित संसद या विधानसभा की अंतिम बैठक की तारीख से छह मास के भीतर हो गए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि अनुच्छेद 174 के संबंध में निर्वाचन आयोग का जो यह निर्वचन है कि विधानसभा का गठन करने के लिए नए निर्वाचन विधानसभा के अंतिम सत्र की अंतिम बैठक की तारीख से छह मास के भीतर करा दिए जाने चाहिए, ऐसा प्रतीत होता है कि संविधान के प्रवर्तन होने के पश्चात् जो परिपाटी रही है उस पर निर्वाचन आयोग का प्रभाव भी है। किसी भी समय यह संदेह उद्भूत नहीं हुआ है कि क्या अनुच्छेद 174(1) के अधीन विधानसभा के एक सत्र की प्रथम बैठक और आगामी सत्र की प्रथम बैठक के बीच छह मास के अंतराल के संबंध में निर्वाचन आयोग द्वारा नई विधानसभा का गठन करने के लिए उस दशा में जब विधानसभा का समय से पहले विघटन कर दिया गया हो तब नए निर्वाचन कराने के लिए किसी परिसीमा काल का उपबंध किया गया है या नहीं। चूंकि इस निर्देश में यह प्रश्न उद्भूत हुआ है और अनुच्छेद 174 को मात्र पढ़ने से जो तथ्य सामने आया है उसको ध्यान में रखते हुए यह दर्शित नहीं होता है कि समय से पहले विधानसभा का विघटन किए जाने के पश्चात् नए निर्वाचन कराने के लिए इस अनुच्छेद में परिसीमा काल के संबंध में कोई उपबंध किया गया है इसलिए निर्वचन के स्वीकृत सिद्धांतों को लागू करते हुए उक्त उपबंध का निर्वचन करना आवश्यक है।

16. संविधान के उपबंधों को अधिनियमित और उनका निर्वचन किए जाने के पीछे जो आशय रहा हैं उसको समझने के लिए ज्ञात पद्धतियों में से एक पद्धति यह है कि ऐतिहासिक विधायी विकास, संविधान सभा की बहस और सांविधानिक उपबंधों को अधिनियमित करने से पहले के दस्तावेजों पर विचार किया जाए ।

17. **केशवानंद भारती** बनाम **केरल राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि यद्यपि, संविधान सभा की बहस निश्चायक नहीं है फिर भी इससे संविधान के उपबंधों को अधिनियमित करने के लिए संविधान के रचयिताओं का आशय दर्शित होता है और ऐसे उपबंधों के पीछे जो आशय है उसका अभिनिश्चय करने के लिए संविधान सभा में हुई बहसों से प्रकाश पड़ सकता है ।

18. **आर.एस. नायक** बनाम **ए.आर. अंतुले**[2] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि संविधान के उपबंधों का अर्थान्वयन करने के लिए बाहरी सहायता के रूप में किसी विधान को अधिनियमित किए जाने से पहले आयोग की रिपोर्टों, संयुक्त संसदीय आयोग की रिपोर्टों, अधिनियमिति को अधिनियमित करने के लिए एकत्रित की गई जानकारी के लिए स्थापित किसी आयोग की रिपोर्ट अनुज्ञेय है । यदि संसद का वास्तविक आशय अभिनिश्चय करने के लिए और विधान का अर्थान्वयन के प्रयोजन के लिए संसद ने यदि ऐसी अधिनियमिति से पहले किसी विशेष आयोग की रिपोर्ट, अस्तित्वशील राज्य की विधि, ऐसे विधान को अधिनियमित करने के लिए आवश्यक परिस्थिति और जो उद्देश्य प्राप्त किया जाना है उनकी सहायता प्राप्त की है तो न्यायालय को ऐसी सहायता से क्यों वंचित किया जाए जबकि न्यायालय का मुख्य रूप से कार्य विधान को अधिनियमित करने के लिए संसद के वास्तविक आशय को प्रभावी करना है । संविधान के उपबंधों का अर्थान्वयन करने में सहायता करने के लिए यदि ऐसे सारवान् और विशिष्ट सहायता लेने से इनकार कर दिया जाएगा तो न्यायालय इनसे वंचित हो जाएगा । इंग्लैंड में अपवर्जनात्मक सिद्धांत काफी हद तक इस आधुनिक दृष्टिकोण के कारण समाप्त हो गया है ।

19. चूंकि संविधान के उपबंधों का निर्वचन करने के लिए पूर्व विद्यमान विधि, ऐतिहासिक विधायी विकास और संविधान सभा की बहसों पर विचार करना अनुज्ञेय है इसलिए हम संविधान के उपबंधों का निर्वचन करने के लिए उन पर विचार करेंगे ।

ऐतिहासिक विधायी विकास

गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ऐक्ट, 1915 (भारत सरकार अधिनियम, 1915) और गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ऐक्ट, 1919 (भारत सरकार अधिनियम, 1919)

20. गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ऐक्ट, 1915(भारत सरकार अधिनियम, 1915) के भाग VI में इंडियन लेजिसलेचर (भारतीय विधानमंडल) के संबंध में उपबंध किए गए हैं और इसमें इंडियन और गवर्नर्स प्रोविन्सेस लेजिसलेचर (गवर्नर के प्रांतीय विधानंडल) से संबंधित उपबंध अंतर्विष्ट हैं । भारतीय विधानमंडल के संबंध में धारा 63घ में उपबंध किए गए हैं जबकि धारा 72ख में गवर्नर के प्रांतों के विधानमंडल के संबंध में उपबंध किए गए हैं । धारा 63घ(1) और धारा 72ख (1) निम्नलिखित है :–

*"धारा 63घ(1) : प्रत्येक काउंसेल ऑफ स्टेट पांच वर्ष की अवधि के लिए बनी रहेगी और प्रत्येक विधानसभा अपनी प्रथम बैठक से तीन वर्ष की अवधि के लिए बनी रहेगी :

---

[1][1973] 2 उम. नि. प. 159 = (1973) 4 एस. सी. सी. 225.

[2][1984] 2 उम. नि. प. 661 = [1984] 2 एस. सी. आर. 495.

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :–

"Sec 63D(1) : Every Council of state shall continue for five years and every Legislative Assembly for three years from its first meeting:

परन्तु यह कि :

(क) गवर्नर द्वारा विधानमंडल के किसी भी चेम्बर(सदन) का पहले ही विघटन किया जा सकता है; और

(ख) गवर्नर जनरल द्वारा, यदि वह विशेष परिस्थितियों में ठीक समझे तो, ऐसी किसी अवधि को बढ़ाया भी जा सकता है; और

(ग) किसी भी सदन के विघटन के पश्चात् गवर्नर जनरल ऐसे सदन के आगामी सत्र के लिए विघटन की तारीख से छह मास अनधिक की तारीख नियत करेगा या राज्य के सचिव की मंजूरी से ऐसी तारीख नियत करेगा जोकि नौ मास से अधिक की नहीं होगी ।

"धारा 72ख(1) : गवर्नर की प्रत्येक लेजिसलेटिव काउंसिल (विधान परिषद्) अपनी प्रथम बैठक से तीन वर्ष की अवधि के लिए बनी रहेगी :

परन्तु यह कि :

(क) गवर्नर द्वारा काउंसिल (परिषद्) का समय से पहले विघटन किया जा सकता है; और

(ख) गवर्नर द्वारा उक्त अवधि को, यदि वह ठीक समझे तो विशेष परिस्थितियों में (जिन्हें अधिसूचना में विनिर्दिष्ट किया जाएगा) प्रोविन्स (प्रान्त) के शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा बढ़ाया जा सकता है और यह बढ़ाई गई अवधि एक वर्ष से अधिक नहीं होगी; और

(ग) काउंसिल (परिषद्) के विघटन के पश्चात् गवर्नर एक तारीख नियत करेगा जोकि काउंसिल (परिषद्) के आगामी सत्र के लिए विघटन की तारीख से छह मास से अधिक की नहीं होगी या राज्य के सचिव की मंजूरी से नौ मास से अधिक की नहीं होगी ।"

Provided that:

(a) either Chamber of the Legislature may be sooner dissolved by the Governor general; and

(b) any such period may be extended by the governor General, if in special circumstances he so think fit; and

(c) after the dissolution of either Chamber the Governor General shall appoint a date not more than six months or, with the sanction of the Secretary of the State, not more than nine months from the date of dissolution for the next session of that Chember"

"Sec 72B(1) : Every Governor's legislative council shall continue for three years from its first meeting :

Provided that :

(a) the Council may be sooner dissolved by the Governor; and

(b) the said period may be extended by the Governor for a period not exceeding one year, by notification in the official gazette of the province, if in special circumstances(to be specified in the notification) he so think fit; and

(c) after the dissolution of the council the Governor shall appoint a date not more than six months or, with the sanction of the Secretary of the State, not more than nine months from the date of dissolution for the next session of the council."

21. भारत सरकार अधिनियम, 1915 के निरसन के पश्चात् भारत सरकार अधिनियम, 1919 प्रवृत्त हुआ था। भारत सरकार अधिनियम, 1919 की धारा 8 में प्रोविंसस (प्रांतों) में लेजिसलेटिव काउंसिल(विधान परिषद्) की बैठकों के बारे में उपबंध किया गया है। धारा 8 निम्नलिखित है :–

*"धारा 8(1) : गवर्नर की प्रत्येक लेजिसलेटिव काउंसिल (विधान परिषद्) अपनी प्रथम बैठक से तीन वर्ष की अवधि के लिए बनी रहेगी :

परन्तु यह कि :

(क) गवर्नर द्वारा काउंसिल (परिषद्) का समय से पहले विघटन किया जा सकता है; और

(ख) गवर्नर द्वारा उक्त अवधि को विशेष परिस्थितियों में (जिन्हें अधिसूचना में विनिर्दिष्ट किया जाएगा) प्रोविन्स(प्रांत) के शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा बढ़ाया जा सकता है और यह अवधि एक वर्ष से अधिक की नहीं होगी; और

(ग) काउंसिल (परिषद्) के विघटन के पश्चात् गवर्नर परिषद् के आगामी सत्र के लिए विघटन की तारीख से एक तारीख नियत करेगा जोकि छह मास से अधिक नहीं होगी या राज्य के सचिव की मंजूरी से नौ मास से अधिक की नहीं होगी।"

22. इसी प्रकार धारा 21 में इंडियन लेजिसलेचर (भारतीय विधानमंडल) की बैठक के लिए उपबंध किए गए हैं। धारा 21 निम्नलिखित हैं :–

**"धारा 21(1) : प्रत्येक काउंसेल ऑफ स्टेट पांच वर्ष की अवधि के लिए बनी रहेगी और प्रत्येक लेजिसलेटिव असेम्बली (विधानसभा) अपनी प्रथम बैठक से तीन वर्ष की अवधि के लिए बनी रहेगी :

परन्तु यह कि :

(क) गवर्नर जनरल द्वारा लेजिसलेचर (विधानमंडल) के किसी भी चैम्बर (सदन) का विघटन समय से पहले किया जा सकता है; और

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :–

*"Sec 8(1) : Every Governor's legislative council shall continue for three years from its first meeting:

Provided that :

(a) the Council may be sooner dissolved by the Governor ; and

(b) the said period may be extended by the Governor for a period nor exceeding one year, by notification in the official gazette of the province, if in special circumstances (to be specified in the notification) he so think fit; and

(c) after the dissolution of the council the Governor shall appoint a date not more than six months or, with the sanction of the Secretary of the State, not more than nine months from the date of dissolution for the next session of the council."

**"Sec 21(1) : Every Council of State shall continue for five years and every Legislative Assembly for three years from its first meeting :

Provided that :

(a) either Chamber of the Legislative may be sooner dissolved by the Governor General; and

275LAW—9B

(ख) गवर्नर जनरल द्वारा, विशेष परिस्थितियों में यदि, वह ठीक समझे तो ऐसी अवधि को बढ़ाया जा सकता है; और

(ग) किसी भी चैम्बर (सदन) के विघटन के पश्चात् गवर्नर जनरल उस चैम्बर (सदन) के आगामी सत्र के लिए विघटन की तारीख से एक तारीख नियत करेगा जोकि विघटन की तारीख से छह मास से अधिक की नहीं होगी या सेक्रेटरी आफ द स्टेट(राज्य के सचिव) की मंजूरी से नौ मास से अधिक की नहीं होगी ।"

23. भारत सरकार अधिनियम, 1915 की धारा 63घ(1) और 72ख(1) और भारत सरकार अधिनियम, 1919 की धारा 8(1) और 21(1) को एक साथ पढ़ने से यह दर्शित होता है कि गवर्नर जनरल या तो काउंसेल ऑफ स्टेट या लेजिसलेटिव असेम्बली (विधानमंडल) को उसकी नियत तारीख से पहले विघटित कर सकता है या उनके कार्यकाल की अवधि बढ़ा सकता है । इसके अतिरिक्त यह भी आदेश किया गया है कि किसी भी चैम्बर (सदन) के विघटन के पश्चात् गवर्नर जनरल ऐसे चैम्बर (सदन) के विघटन की तारीख से एक तारीख नियत करेगा जोकि छह मास से अधिक की नहीं होगी या सेक्रेटरी आफ द स्टेट (राज्य के सचिव) की मंजूरी से नौ मास से अधिक की नहीं है इसी प्रकार प्रोविन्स (प्रांत) का गवर्नर भी विधान परिषद् का विघटन उसकी नियत अवधि से पहले कर सकता है या उसके कार्यकाल की अवधि बढ़ा सकता है । इसके अतिरिक्त गवर्नर लेजिसलेटिव् काउंसिल (विधान परिषद्) के विघटन के पश्चात् इस बात के लिए आबद्ध है कि वह लेजिसलेटिव काउंसिल(विधान परिषद्) के आगामी सत्र के लिए विघटन की तारीख से एक तारीख नियत करेगा जोकि छह मास से अधिक की नहीं होगी या सेक्रेटरी आफ द स्टेट (राज्य के सचिव) की मंजूरी से नौ मास से अधिक की नहीं होगी ।

24. यह उल्लेखनीय है कि गवर्नर जनरल और प्रोविन्स(प्रांत) के गवर्नर की जो ये शक्तियां हैं उन शक्तियों का प्रयोग है जिनका ऐतिहासिक रूप से ब्रिटिश परिपाटी के अधीन ब्रिटिश मोनार्क द्वारा प्रयोग किया जाता है । गवर्नर जनरल और गवर्नर द्वारा क्रमशः नए चैम्बर (सदन)या लेजिसलेटिव काउंसिल (विधान परिषद्) के आगामी सत्र के लिए तारीख नियत करने का जो आदेश है वह ब्रिटिश परिपाटियों पर आधारित है जिसके अधीन मोनार्क हाउस ऑफ कामन्स के विघटन के पश्चात् उसके अगले सत्र की तारीख नियत करता है । इसके अतिरिक्त लेजिसलेटिव काउंसिल (विधान परिषद्) की अवधि बढ़ाने या उसे समय से पहले विघटित करने से संबंधित गवर्नर जनरल की जो शक्ति है वह भी ब्रिटिश परिपाटियों पर आधारित है ।

गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 (भारत सरकार अधिनियम, 1935)

25. भारत सरकार अधिनियम, 1919 का निरसन भारत सरकार अधिनियम, 1935 द्वारा कर दिया गया था । धारा 19(1) में फेडरल लेजिसलेचर(परिसंघीय विधानमंडल) की बैठकों के लिए उपबंध किए गए हैं । धारा 19(1) निम्नलिखित है :–

**"धारा 19(1) : फेडरल लेजिसलेचर(परिसंघीय विधानमंडल) के चेम्बरों(सदनों) का अधिवेशन प्रत्येक वर्ष कम-से-कम एक बार आहूत किया जाएगा और एक सत्र में उनकी अंतिम बैठक तथा आगामी सत्र में प्रथम

(b) any such period may be extended by the Governor General, if in special circumstances he so think fit; and

(c) after the dissolution of either Chamber the Governor General shall appoint a date not more than six months or, with the sanction of the Secretary of the State, not more than nine months from the date of dissolution for the next session of that Chamber."

**"Sec 19(1) : The Chambers of the Federal Legislature shall be summoned to meet once at least in every year and twelve months shall not intervene between their last sitting in one session

बैठक के लिए नियत की गई तारीख के बीच बारह मास का अंतर नहीं होगा ।"

26. इसी प्रकार अधिनियम की धारा 62(1) में प्रोविन्सियल लेजिसलेचर(प्रांतीय विधानमंडल) की बैठकों के लिए उपबंध किया गया है । धारा 62(1) निम्नलिखित है :–

***"धारा 62(1) : प्रत्येक प्रोविन्सियल लेजिसलेचर(प्रांतीय विधानमंडल) का चैम्बर या चैम्बरस(सदन या सदनों) का अधिवेशन प्रत्येक वर्ष में कम-से-कम एक बार आहूत किया जाएगा और एक सत्र में उनकी अंतिम बैठक और आगामी सत्र में उनकी प्रथम बैठक के लिए नियत तारीख के बीच बारह मास का अंतराल नहीं होगा ।"

27. हमारा यह निष्कर्ष है कि नए चैम्बर (सदन) के आगामी सत्र के लिए तारीख नियत करने की या चैम्बरों(सदनों) की अवधि बढ़ाने के संबंध में गवर्नर जनरल और प्रोविन्सस (प्रांतीय) गवर्नरों की शक्तियों और उत्तरदायित्वों की बाबत भारत सरकार अधिनियम, 1915 और भारत सरकार अधिनियम, 1919 में जो उपबंध अंतर्विष्ट थे उनका अनुसरण भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अधीन बिल्कुल भी नहीं किया गया है । उपर्युक्त उपबंधों द्वारा न केवल फेडरल लेजिसलेचर (परिसंघीय विधानमंडल) और प्रोविन्सियल लेजिसलेचर (प्रांतीय विधानमंडलों) के चैम्बरों (सदनों) का कार्यकाल बढ़ाए जाने की शक्ति प्रदत्त की गई थी अपितु ब्रिटिश परिपाटी के अनुसार नए चैम्बर (सदन) के आगामी सत्र के लिए तारीख नियत करने के लिए भी उपर्युक्त उपबंधों में शक्ति प्रदत्त की गई थी इन शक्तियों को इस अधिनियम के अधीन समाप्त कर दिया गया है । इस प्रकार भारत सरकार अधिनियम, 1935 में पूर्व अधिनियमों का अनुसरण नहीं किया गया । यह भी उल्लेखनीय है कि भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अधीन निर्वाचन कराने की बाबत कानूनी उपबंध किए गए थे । भारत सरकार अधिनियम, 1935 के पैरा 20 अनुसूची 5 के अधीन गवर्नर जनरल को पांचवीं और छठी अनुसूची के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए नियम बनाने के लिए सशक्त किया गया था । पैरा 20 का पूर्ण रूप से संबंध निर्वाचन से संबंधित विषयों से है और खंड (iii) का संबंध विशेष रूप से निर्वाचन कराने से है । इसी प्रकार भारत सरकार अधिनियम, 1935 की अनुसूची 6 में निर्वाचक नामावली और मताधिकार की बाबत उपबंध अंतर्विष्ट हैं । ऐसे उपबंध भारत सरकार अधिनियम, 1915 या भारत सरकार अधिनियम, 1919 में नहीं है । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पहली बार निर्वाचन कराने के लिए इस अधिनियम में कानूनी उपबंध किए गए हैं और कार्यपालिका के हाथों में यह कार्य सुपुर्द किया गया है । चूंकि निर्वाचन कराने के लिए तारीख नियत करने की शक्ति कार्यपालिका के हाथ में दी गई थी इसलिए नए विधानमंडल को आगामी सत्र के लिए तारीख नियत करने के उपबंध जो भारत सरकार अधिनियम, 1915 और 1919 में थे उनका अनुसरण अधिनियम, 1935 में नहीं किया गया । इससे यह दर्शित होता है कि भारत में निर्वाचन से संबंधित कार्य ब्रिटिश परिपाटियों पर आधारित नहीं रहा था ।

28. भारत के संविधान, 1950 के अधीन भी इन उपबंधों का अनुसरण नहीं किया गया है । भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अधीन निर्वाचन कराने का कार्य एक कार्यपालिक प्राधिकारी में विहित किया गया था और भारत के संविधान के अधीन अनुच्छेद 324 के अधीन एक सांविधानिक प्राधिकरण का निर्वाचनों का अधीक्षण, निर्देशन और संचालन करने के लिए सृजन किया गया था । इस निकाय को निर्वाचन आयोग कहा जाता है और यह पूर्ण रूप से स्वतंत्र और निष्पक्ष है तथा कार्यपालिका इसमें कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकती है । लोकसभा या विधानसभा का गठन करने के लिए निर्वाचनों से संबंधित मामलों की बाबत भारत के संविधान और भारत सरकार अधिनियम, 1935 के बीच जो फर्क है वह उल्लेखनीय है । यह उल्लेख किया जा सकता है कि अनुच्छेद 85(1) और अनुच्छेद 174(1)

---

and the date appointed for their first sitting in the next session."

***"62(1) : The Chamber or Chambers of each Provincial Legislature shall be summoned to meet once at least in every year, and twelve months shall not intervene between their last sitting in one session and the date appointed for their first sitting in the next session."

को वस्तुतः भारत सरकार अधिनियम, 1935 से ही लिया गया है और इन अनुच्छेदों का प्रयोजन केवल अस्तित्वशील लोकसभा और राज्य विधानमंडलों के सत्रों को कितनी बार कराए जाने से है और इस बाबत इन अनुच्छेदों में उपबंध किए गए हैं और इन अनुच्छेदों में विघटित सदनों के संबंध में कोई उपबंध नहीं किया गया है ।

संविधान के अनुच्छेद 85 और 174 की बाबत संविधान सभा की बहस

29. प्रारूप अनुच्छेद 69 और 153 क्रमशः संविधान के अनुच्छेद 85 और अनुच्छेद 174 के तत्सम हैं । प्रारूप अनुच्छेद 69 में संसद के संबंध में उपबंध किए गए थे और प्रारूप अनुच्छेद 153 में राज्य विधानसभा के संबंध में उपबंध किए गए थे । जब उपर्युक्त दो प्रारूप अनुच्छेदों को चर्चा के लिए संवैधानिक सभा के समक्ष रखा गया था तब प्रारूप अनुच्छेद 153 पर अधिक बहस नहीं हुई थी किन्तु जब संविधान सभा के समक्ष प्रारूप अनुच्छेद 69 को रखा गया था तब उसके संबंध में काफी विचार-विमर्श किया गया था । प्रारूप अनुच्छेद 69 और 153 निम्नलिखित है :–

*"69(1) : प्रत्येक वर्ष में कम-से-कम दो बार लोकसभा का अधिवेशन आहूत किया जाएगा और एक सत्र की अंतिम बैठक तथा आगामी सत्र की प्रथम बैठक के लिए नियत तारीख के बीच छह मास का अंतर नहीं होगा ।

(2) इस अनुच्छेद के उपबंधों के अधीन रहते हुए राष्ट्रपति समय-समय पर –

(क) संसद के सदनों या किसी भी सदन को ऐसे समय और स्थान पर जो वह ठीक समझे, अधिवेशन के लिए आहूत करेगा ।

(ख) सदनों का सत्रावसान कर सकेगा ;

(ग) लोकसभा का विघटन कर सकेगा ।

153(1) : राज्य विधानमंडल के सदन या सदनों का अधिवेशन प्रत्येक वर्ष में कम-से-कम दो बार आहूत किया जाएगा और एक सत्र की अंतिम बैठक और आगामी सत्र की प्रथम बैठक के लिए नियत तारीख के बीच छह मास का अंतर नहीं होगा ।

(2). इस अनुच्छेद के उपबंध के अधीन रहते हुए राज्यपाल समय-समय पर –

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :

"69(1) : The Houses of Parliament shall be summoned to meet twice at least in every year, and six months shall not intervene between their last sitting in one session and the date appointed for their first sitting in the next session.

(2) Subject to the provisions of this Article, the President may from time to time –

(a) summon the Houses or either House of Parliament to meet at such time and place as he thinks fit;

(b) prorogue the Houses;

(c) dissolve the House of the People.

153(1): The House or Houses of the Legislature of the State shall be summon to meet twice at least in every year and six months shall not intervene between their last sitting in one session and the date appointed for their first sitting in the next session.

(2) Subject to the provisions of this Article, the Governor may from time to time –

(क) सदनों या किसी भी सदन को ऐसे समय और स्थान पर आहूत कर सकेगा जो वह ठीक समझे;

(ख) सदनों का सत्रावसान कर सकेगा;

(ग) विधानसभा का विघटन कर सकेगा ।

(3) इस अनुच्छेद के खंड (2) के उपखंड (क) और (ग) के अधीन राज्यपाल के कृत्यों का प्रयोग उसके विवेकाधिकार पर किया जाएगा ।"

30. तारीख 18 मई, 1949 को जब प्रारूप अनुच्छेद 69 पर चर्चा की गई थी तब संसद के सदनों के दो सत्रों के बीच अंतराल की अवधि में परिवर्तन किए जाने का यह प्रस्ताव किया गया था कि अंतराल की अवधि को छह मास के स्थान पर तीन मास कर दिया जाए जिससे कि यह सुनिश्चित हो सके कि देश की जनता के सामने जो समस्याएं हैं उन पर विचार करने के लिए संसद को अधिक समय मिल सके । संविधान सभा के सदस्यों में से एक सदस्य प्रोफेसर के.टी. शाह ने प्रारूप अनुच्छेद 69, जैसा कि वह उस समय था, में संशोधन करने का प्रस्ताव करते समय यह कहा था कि यह प्रारूप अनुच्छेद ब्रिटिश काल के दौरान विद्यमान अन्य बातों पर आधारित है क्योंकि उस समय विधायी कार्य अधिक नहीं किया जाता था और सदन को केवल विधायी मंजूरी अभिप्राप्त करने के लिए आहूत किया जाता था । रि एच.वी. कामथ ने बहस में हस्तक्षेप करते हुए संसद के सदनों का जल्दी-जल्दी सत्र बुलाए जाने की आवश्यकता पर जोर दिया था । उन्होंने यह सुझाव दिया था कि प्रत्येक वर्ष में कम-से-कम तीन बार सदनों की बैठक होनी चाहिए । उन्होंने यह उल्लेख किया था कि संयुक्त राज्य अमेरिका और इंग्लैंड में विधान मंडल की एक वर्ष में आठ से नौ मास तक बैठक होती है जिसके परिणामस्वरूप वे प्रभावी रूप से अपने संसदीय कृत्यों और जिम्मेदारियों का निर्वहन कर पाते हैं । उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया था कि भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अधीन फेडरल(परिसंघीय) या स्टेट लेजिसलेचर(राज्य विधानमंडलों) के लिए उपबंधित कार्य करने की अवधि बहुत कम थी क्योंकि उन विधानमंडलों द्वारा अधिक कार्य नहीं किया जाता था । उन्होंने भी इस बात को दोहराया था कि संसद के सदनों की जल्दी-जल्दी अधिक बैठकें होनी चाहिएं जिससे कि देश के हितों के संबंध में ब्यौरेवार बहस की जा सके और सुचारू रूप से कार्य किया जा सके । प्रोफेसर के.टी. शाह को संसद के नियमित बैठकों के बारे में बहुत अधिक चिन्ता थी और इसलिए उन्होंने संशोधन 1478 का प्रस्ताव किया था जोकि निम्नलिखित है :–

*"अनुच्छेद 69(2)(ग) के अंत में निम्नलिखित परन्तुक जोड़ा जाना चाहिए :

परन्तु यह कि यदि राष्ट्रपति किसी समय इस संविधान में यथाउपबंधित लोकसभा के विघटन के पश्चात् किसी समय लोकसभा या संसद के किसी भी सदन को तीन मास की अवधि से अधिक तक आहूत नहीं करते हैं या लोकसभा के अस्तित्व में रहते हुए 90 दिन से अधिक की अवधि तक उसके सदन को आहूत नहीं करते

(a) summon the Houses or either House to meet at such time and place as he thinks fit;

(b) prorogue the House or Houses;

(c) dissolve the Legislative Assembly.

(3) The functions of the Governor under sub-clauses (a) and (c) of clause (2) of this Article shall be exercised by him in his discretion".

*"at the end of Art 69(2)(c), the following proviso is to be added:

Provided that if any time the President does not summon as provided for in this Constitution for more than three months the House of the People or either House of Parliament at any time after the dissolution of the House of the People, or during the currency of the lifetime of the House of the People for a period of more than 90 days, the Speaker of the House of the People or the

हैं तब लोकसभा का अध्यक्ष या राज्य सभा का अध्यक्ष क्रमशः अपने-अपने सदनों को आहूत कर सकेगा और इस प्रकार आहूत किए गए सदनों की बाबत यह माना जाएगा कि उन्हें वैध रूप से आहूत किया गया है तथा सदनों के समक्ष रखे गए कार्य या उसके समक्ष जो कार्य आएंगे उन पर कार्य करने के लिए ऐसा सदन हकदार होगा ।"

31. इसके अतिरिक्त प्रोफेसर के.टी. शाह ने संशोधन सं. 1483 भी प्रस्तावित किया था जिसमें अनुच्छेद 69(2) के पश्चात् खंड (3) को अंतःस्थापित किए जाने का और बाद में एक परन्तुक अंतःस्थापित किए जाने का उपबंध किया गया था जोकि बहुत सुसंगत है । खंड (3) निम्नलिखित है :–

*"(3) लोकसभा के सत्रावसान या विघटन के पश्चात् यदि राष्ट्रपति तीन मास से अधिक अवधि के लिए संसद को आहूत करने में असमर्थ या अनिच्छुक है और प्रधानमंत्री की यह राय है कि राष्ट्रीय आपात विद्यमान है तब वह लोकसभा के अध्यक्ष और राज्य सभा के अध्यक्ष को यह अनुरोध कर सकेंगे कि संसद के दोनों सदनों को आहूत किया जाए और उसके समक्ष राष्ट्रीय आपात का सामना करने के लिए आवश्यक कार्य सदनों के समक्ष रख सकेंगे । इस प्रकार एक साथ किए गए संसद के सदन द्वारा जो कार्य किया जाएगा उसकी बाबत यह माना जाएगा कि उस कार्य को वैध रूप से किया गया है और उस कार्य की बाबत यह माना जाएगा कि उस कार्य को सामान्य अनुक्रम में संसद के किसी अधिनियम, संकल्प या आदेश के रूप में वह कार्य मान्य और अबाध्यकर है :

परन्तु यह और कि यदि लोकसभा के सत्रावसान या विघटन के पश्चात् तीन मास या 90 दिन से अधिक की अवधि के लिए राष्ट्रपति किसी भी समय संसद के सदनों को आहूत करने में असमर्थ या अनिच्छुक है तथा प्रधानमंत्री भी उपर्युक्त अनुरोध को करने के लिए असमर्थ या अनिच्छुक है तब संसद के सदनों में से किसी भी सदन का अध्यक्ष सदनों की एक साथ बैठक बुला सकेगा और सदन की इस बैठक को विधिमान्य रूप से बुलाया हुआ माना जाएगा और ऐसा सदन उसके समक्ष रखे गए किसी भी कार्य को करने का हकदार होगा ।"

32. श्री बी.आर. अम्बेडकर ने उपरोक्त प्रस्तावित संशोधनों का उत्तर देते हुए यह उल्लेख किया था कि संविधान के प्रवृत्त होने के पश्चात् कोई भी कार्यपालक विधानमंडल के साथ कठोर व्यवहार नहीं कर सकता है जबकि अंग्रेजों के जमाने में विधानमंडल के समक्ष ऐसी स्थिति नहीं थी क्योंकि उस समय विधानमंडल को केवल राजस्व मांगों को पारित करने के लिए आहूत किया जाता था । चूंकि कार्यपालिका विधानमंडल के साथ कठोर व्यवहार नहीं कर

---

of the Council of States may summon each his respective House which shall then be deemed to have been validly summoned and entitled to deal with any business placed or coming before it".

*"(3) : If any time the President is unable or unwilling to summon Parliament for more than three months after the prorogation or dissolution of the House of the People and there is in the opinion of the Prime Minister a National Emergency he shall request the Speaker and the Chairman of the Council of States to summon both Houses of Parliament, and place before it such business as may be necessary to cope with the National Emergency. Any business done in either House of parliament thus called together shall be deemed to have been validly transactged, and shall be valid and binding as any Act; resolution or Order of pariliament passed in the normal course;

Provided further that if it any time the President is unable or unwilling to summon Parliament for a period of more than three months or 90 days after prorogation or dissolution of the House of the people. And the Prime Minister is also unable or unwilling to make the request aforesaid, the Chairman of either Houses of parliament this called together shall be deemed to be validly convened and entitled to deal with any business places before it ."

सकती है इसलिए कुछ सदस्यों द्वारा इस बाबत जो डर व्यक्त किया गया है कि संसद के सदनों की कम-से-कम आज्ञापक बैठकें होनी चाहिएं इस संबंध में सदस्यों का जो डर है वह बेमानी है । उन्होंने आगे सदस्यों का ध्यान इस तथ्य की ओर केन्द्रित किया था कि एक वर्ष में कम-से-कम आज्ञापक बैठकों के संबंध में उपबंध करने के लिए जिस खंड का प्रस्ताव किया गया है यदि आवश्यकता हो तो संसद की जल्दी-जल्दी बैठक बुलाई जा सकती है और यदि जल्दी-जल्दी अधिक सत्र बुलाए जाने को आज्ञापक बना दिया जाता है तो सत्र इतनी जल्दी-जल्दी और इतने लम्बे हो जाएंगे जिससे सदस्य अधिक कार्य नहीं कर सकेंगे ।

33. उपर्युक्त बहस से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि अनुच्छेद 85 और अनुच्छेद 174 को भारत सरकार अधिनियम, 1935 की क्रमशः धारा 19(1) और 62(1) के अनुसार अधिनियमित किया गया है और इनमें विद्यमान विधानसभा के सत्रों को कितनी बार बुलाया जाना है उसकी बाबत उपबंध किए गए हैं और इन अनुच्छेदों का आशय लोकसभा या विधानसभा का समय से पहले विघटन होने की दशा में नए सदनों का गठन करने के लिए निर्वाचन कराने के लिए कोई परिसीमा काल उपबंधित नहीं किया गया है । इसके अतिरिक्त यह सुझाव दिया गया था कि दो सदनों के बीच की अंतराल की अवधि को छह मास से कम करके तीन मास कर दिया जाए जिससे कि संसद लम्बी अवधि तक बैठ सके और कार्य कर सकें । इससे यह दर्शित होता है कि ऐसा करने का आशय अस्तित्वशील संसद के सदनों के लिए था न कि विघटित सदनों के लिए क्योंकि कोई विघटित सदन न तो बैठक कर सकता है और न ही कोई विधायी कार्य कर सकता है ।

34. यह उल्लेखनीय है कि बहस के दौरान प्रोफेसर के.टी. शाह ने संशोधन सं. 1478 और 1483 का प्रस्ताव किया था जिन्हें ऊपर उद्धृत किया गया है और इन संशोधन में विनिर्दिष्ट रूप से विघटित लोकसभा की संभावना और यदि परिस्थितियोंवश आवश्यक हो तो राष्ट्रपति या अध्यक्ष द्वारा राज्य सभा का आपात सत्र बुलाने के लिए उपबंध किया गया था । इन संशोधनों को स्वीकार नहीं किया गया था । इससे यह दर्शित होता है कि प्रारूप अनुच्छेद 69 को केवल अस्तित्वशील और कार्यशील सदन को लागू करने के लिए ही प्रस्तावित किया गया था और दो सत्रों के बीच छह मास की अंतराल की जो अवधि नियत की गई है वह किसी विघटित सदन को लागू नहीं होती है ।

35. इसके अतिरिक्त यह उल्लेख किया जा सकता है कि बहस के दौरान यह सुझाव दिया गया था कि यदि इस बात को स्वीकार कर लिया जाता है कि एक वर्ष में आठ से नौ मास तक संसद के सदनों की बैठक होगी तो संसद या विधानमंडल का समय से पहले विघटन हो जाने की दशा में नए निर्वाचन कराने के लिए पर्याप्त समय नहीं मिल पाएगा और उससे संविधान के उपबंध भंग होंगे । इससे यह भी दर्शित होता है कि अनुच्छेद 174(1) में जो उपबंध अंतर्विष्ट हैं उनका संबंध केवल अस्तित्वशील और कार्यशील सदन से है । इसके अतिरिक्त बहस के दौरान जो यह सुझाव दिया गया है कि अंतराल की अवधि छह मास के स्थान पर तीन मास कर दी जाए यदि इस सुझाव को स्वीकार कर लिया जाता है तो इसका यह अर्थ होगा कि लोकसभा या विधानसभा का समय से पहले विघटन के पश्चात् नए निर्वाचन कराने होंगे जिससे कि, यथास्थिति, विघटित संसद या विधानसभा की अंतिम बैठक की तारीख से तीन मास के भीतर लोकसभा या विधानसभा की बैठक हो सके । इस कारण लोकसभा या विधानसभा का गठन करने के लिए निर्वाचन कराने के लिए पर्याप्त समय नहीं मिल सकेगा । इससे यह दर्शित होता है कि अनुच्छेद 174 में अंतर्विष्ट उपबंधों के संबंध में संविधान के रचयिताओं का आशय केवल अस्तित्वशील विधानसभा के लिए था न कि विघटित विधानसभा के लिए ।

अनुच्छेद 85 और अनुच्छेद 174 का संशोधन करने की बाबत संविधान प्रथम संशोधन विधेयक के दौरान हुई बहस

36. संविधान प्रथम संशोधन से पहले और इस संशोधन के पश्चात् मूल अनुच्छेद 85 और 174 निम्नलिखित हैं :–

अनुच्छेद	संविधान में मूल अनुच्छेद	संविधान(संशोधन अधिनियम), 1951 द्वारा यथासंशोधित अनुच्छेद
अनुच्छेद 85 संसद के सत्र, सत्रावसान और विघटन	(1) संसद के दोनों सदनों का प्रत्येक वर्ष में कम-से-कम दो बार अधिवेशन आहूत किया जाएगा और उस के सत्र की अंतिम बैठक और आगामी सत्र की प्रथम बैठक के लिए नियत तारीख के बीच छह मास का अंतर नहीं होगा ।	(1) राष्ट्रपति समय-समय पर, संसद के प्रत्येक सदन को ऐसे समय और स्थान पर, जो वह ठीक समझे,अधिवेशन के लिए आहूत करेगा, किन्तु उसके एक सत्र की अंतिम बैठक और आगामी सत्र की प्रथम बैठक के लिए नियत तारीख के बीच छह मास का अंतर नहीं होगा ।
	(2) खंड (1) के उपबंधों के अधीन रहते हुए राष्ट्रपति समय-समय पर– (क)सदनों को या किसी भी सदन का ऐसे समय और स्थान पर आहूत कर सकेगा जो वह ठीक समझे; (ख) सदनों का सत्रावसान कर सकेगा; (ग) लोकसभा का विघटन कर सकेगा ।	(2) राष्ट्रपति समय-समय पर – (क) सदनों को या किसी सदन का सत्रावसान कर सकेगा; (ख) लोकसभा का विघटन कर सकेगा ।
अनुच्छेद 174 राज्य के विधान-मंडल के सत्र, सत्रावसान और विघटन	(1) राज्य के विधानमंडल के सदन या सदनों का प्रत्येक वर्ष में कम-से-कम दो बार अधिवेशन आहूत किया जाएगा और उसके एक सत्र की अंतिम बैठक और आगामी सत्र की प्रथम बैठक के लिए नियत तारीख के बीच छह मास का अंतर नहीं होगा ।	(1) राज्यपाल, समय-समय पर, राज्य के विधानमंडल के सदन या प्रत्येक सदन ऐसे समय और स्थान पर, जो वह ठीक समझे, अधिवेशन के लिए आहूत करेगा किन्तु उसके एक सत्र की अंतिम बैठक और आगामी सत्र की प्रथम बैठक के लिए नियत तारीख के बीच छह मास का अंतर नहीं होगा ।
	(2) खंड (1) के उपबंधों के अधीन रहते हुए राज्यपाल समय-समय पर – (क) सदन का या किसी सदन का ऐसे समय और स्थान पर अधिवेशन आहूत कर सकेगा जो वह ठीक समझे; (ख) सदन या सदनों का सत्रावसान कर सकेगा ।	(2) राज्यपाल समय-समय पर – (क) सदन का या किसी सदन का सत्रावसान कर सकेगा; (ख) विधानसभा का विघटन कर सकेगा ।

37. उपरोक्त मूल अनुच्छेदों से यह दर्शित होता है कि यह आज्ञापक था कि संसद के सदन और राज्य विधानमंडल का एक वर्ष में कम-से-कम दो बार अधिवेशन होगा और एक सत्र की अंतिम बैठक और आगामी सत्र की प्रथम बैठक के लिए नियत तारीख के बीच छह मास का अंतर नहीं होगा । यह एक विसंगति थी । यदि 12 मास की निरंतर अवधि तक कोई सत्र चलता रहा है तो तकनीकी रूप से यह दलील दी जा सकती है कि संसद का उस वर्ष में दो बार अधिवेशन आहूत नहीं किया गया था क्योंकि सत्रावसान नहीं हुआ है और नया सत्र आहूत नहीं किया गया है इसलिए मूल अनुच्छेद 174(1) के कारण विरोधाभास उत्पन्न हो गया था । उक्त विसंगति को दूर करने के लिए अनुच्छेद 85 और 174 का संशोधन करने के लिए प्रथम संशोधन विधेयक प्रस्तावित किया गया । प्रथम संशोधन विधेयक को पुरःस्थापित करते समय पंडित जवाहर लाल नेहरू ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया था :–

> "......अनुच्छेदों में से एक अनुच्छेद में यह उल्लेख किया गया है कि प्रत्येक वर्ष में कम-से-कम दो बार सदनों का अधिवेशन होगा और राष्ट्रपति उसमें अभिभाषण करेंगे । संभवतया इसका निर्वचन अब इस प्रकार किया जा सकता है कि इस सदन की पूरे साल बैठक ही नहीं हुई है । यह एक असाधारण परिस्थिति है क्योंकि इस सदन ने इस साल बहुत अधिक काम किया है जोकि इस देश में संसद में पहले कभी भी नहीं हुआ था । वास्तव में यह सदन नवम्बर मास से क्रिसमस तक बिना अंतराल के चल रहा है और इस बात की संभावना है कि इसके आगे भी बैठक चलती रहे, फिर भी कुछ तेज/निर्वचनकर्ता द्वारा यह माना जाएगा कि संविधान के निबंधनानुसार इस साल संसद का अधिवेशन नहीं हुआ है <u>क्योंकि हमारी बैठक नवम्बर मास में आरंभ हुई थी और इसके बाद हमारी बैठक नहीं हुई है – इस सत्र का सत्रावसान नहीं हुआ है – इस वर्ष राष्ट्रपति ने संसद में अभिभाषण नहीं किया है</u> । <u>यदि पूर्ण रूप से यह माना जाए कि इस सदन की बैठक बिना किसी अंतराल के, कभी-कभी संक्षिप्त अंतराल के साथ, पूरे वर्ष चलती रही और संसद ने 12 मास तक कार्य किया है तब विधि के अनुसार यह कहा जा सकता है कि इस वर्ष संसद की बैठक ही नहीं हुई है</u> । यद्यपि इस अनुच्छेद से हमारा कार्य प्रभावी नहीं होता है किन्तु इस वजह से हमें फुरसत नहीं मिल पाएगी । वास्तव में इसका अर्थ यह है कि वर्ष में कम-से-कम दो बार संसद का अधिवेशन होना चाहिए और उसकी बैठकों के बीच का अंतराल छह मास से अधिक नहीं होना चाहिए । कोई भी सरकार संसद का अधिवेशन किए बगैर अस्तित्व में नहीं रह सकती है ।" (अधोरेखांकित पर बल दिया गया)

डा. बी. आर. अम्बेडकर ने बहस में हस्तक्षेप करते हुए निम्नलिखित कथन किया :–

> "........आहूत शब्द के कारण इसका परिणाम यह है कि यद्यपि संसद समय-समय पर स्थगित होने के पश्चात् पूरे वर्ष बैठक कर सकती है फिर भी यह कहा जा सकता है कि संसद का अधिवेशन केवल एक बार आहूत किया गया है न कि दो बार । <u>इसलिए सत्रावसान अवश्य होना चाहिए जिससे कि नया सत्र आरंभ हो सके । यह महसूस किया गया कि इस कठिनाई को हटा दिया जाए और परिणामतः इस अनुच्छेद के पहले भाग का लोप किया गया है । उपबंध यह है कि जब भी कभी संसद का सत्रावसान किया जाता है तब बनाए रखी गई छह मास की अवधि के भीतर नया सत्र बुलाया जाएगा ।"</u> (अधोरेखांकित पर बल दिया गया है)

38. यहां तक कि अनुच्छेद 85 और अनुच्छेद 174 के प्रस्तावित संशोधनों की बहस में संसद के जिन सदस्यों ने भाग लिया था उनकी चिन्ता भी केवल चालू सत्र और अस्तित्वशील लोकसभा के कार्य से संबंधित थी । इसके अतिरिक्त बहस की कार्यवाहियों से भी यह दर्शित होता है कि पूरी बहस सत्रावसान और आहूत करने से ही संबंधित थी । सदन के विघटन या गठन की बाबत बिल्कुल भी चर्चा नहीं की गई थी और इस संशोधन द्वारा केवल मूल अनुच्छेद 85 और 174 में जो विसंगति थी उसको हटाने की ईप्सा की गई थी । इन कारणों को ध्यान में रखते हुए हमारा यह मत है कि अनुच्छेद 174(1) किसी विघटित विधान सभा को लागू नहीं होता है ।

पाठ विषयक

39. एक और अन्य दृष्टिकोण से इस प्रश्न की परीक्षा की जानी चाहिए । जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है कि अनुच्छेद 85 और अनुच्छेद 174 में जिस भाषा का प्रयोग किया गया है वह भाषा स्पष्ट और साधारण है और

इसमें विधानसभा के समय से पहले विघटन के पश्चात् नई विधानसभा के लिए उसके एक सत्र की अंतिम बैठक और आगामी सत्र की प्रथम बैठक के लिए नियत की गई तारीख के बीच छह मास के किसी अंतराल को अनुध्यात नहीं किया गया है फिर भी हम अनुच्छेद 174 के पाठ की परीक्षा भी करेंगे ।

40. अनुच्छेद 174 से यह दर्शित होता है कि अभिव्यक्ति 'आगामी सत्र की प्रथम बैठक के लिए नियत तारीख' के संबंध में संभवतया अनुच्छेद 174(1) में सदन का विघटन हो जाने के पश्चात् किसी दशा में या नए सिरे से निर्वाचित होने के पश्चात् किसी नई विधानसभा की दशा में प्रथम बार अधिवेशन करने के लिए उपबंध नहीं किया गया है । निर्वाचन के पश्चात् यदि नई विधानसभा का कोई सत्र होता है तब ऐसी नई विधानसभा का सत्र "पहला सत्र" होगा न कि उसका "आगामी सत्र" । संविधान के अन्य भागों में 'प्रत्येक साधारण निर्वाचन के पश्चात्' अभिव्यक्ति का उपयोग किया गया है और ऐसा उपबंध अनुच्छेद 176 है । अनुच्छेद 174 में 'प्रत्येक साधारण निर्वाचन के पश्चात्' ऐसी वाक्य रचना के अभाव में स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित होता है कि उक्त अनुच्छेद किसी विघटित विधानसभा या निर्वाचित नई विधानसभा को लागू नहीं होता है । इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 174(1) में इन अभिव्यक्तियों का प्रयोग किया गया है अर्थात् 'उसके एक सत्र की अंतिम बैठक', 'आगामी सत्र की प्रथम बैठक' । इनमें से किसी भी अभिव्यक्ति से यह इंगित नहीं होता है कि इसकी बैठकों और सत्रों में बिल्कुल कोई अलग विधानसभा अर्थात् ऐसी कोई पूर्व विधानसभा जिसका विघटन कर दिया गया है और निर्वाचन के पश्चात् उसकी उत्तरवर्ती विधानसभा इसमें सम्मिलित है । इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 174 में 'आहूत' शब्द का प्रयोग किया गया है न कि 'गठन' शब्द का । अनुच्छेद 174 द्वारा राज्यपाल को किसी विधानसभा को आहूत करने के लिए सशक्त किया गया है और ऐसी विधानसभा केवल कोई अस्तित्वशील विधानसभा ही हो सकती है । किसी विधानसभा का गठन केवल लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 73 के अधीन किया जा सकता है और संविधान के अनुच्छेद 188 की अपेक्षा से यह इंगित होता है कि कोई विधानसभा अपनी प्रथम बैठक आरंभ करने से पहले भी अस्तित्व में आ सकती है ।

41. अनुच्छेद 174 में सत्र की बाबत अनुध्यात किया गया है अर्थात् किसी अस्तित्वशील विधानसभा की बैठक के बारे में इस अनुच्छेद में अनुध्यात किया गया है न कि विघटन के पश्चात् किसी नई विधानसभा की बैठक के बारे में और इस बात का मूल्यांकन 'एक सत्र में उसकी अंतिम बैठक और आगामी सत्र में उसकी प्रथम बैठक' अभिव्यक्ति से किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 85 और 174 के पार्श्व टिप्पण में आने वाले 'सत्र' शब्द एक असंदिग्ध पद है और इसमें किसी अस्तित्वशील ऐसी विधानसभा को निर्दिष्ट किया गया है जिसे राज्यपाल आहूत कर सकता है । जब 'सत्र या सत्रों' पद का उपयोग किया जाता है तो इन शब्दों का प्रयोग किसी विशिष्ट विधानसभा या किसी विशिष्ट लोकसभा के संदर्भ में किया गया है न कि किसी ऐसे विधायी निकाय के संबंध में जो विघटन के पश्चात् समाप्त हो गया है । विघटन से विधानमंडल का अस्तित्व समाप्त हो जाता है और उसके सारे कार्य भी समाप्त हो जाते हैं । सदन का अस्तित्व समाप्त होने के पश्चात् उसकी बैठकों और सत्रों की पूरी श्रृंखला टूट जाती है और ऐसे सदन का कोई आगामी सत्र नहीं होता या आगामी सत्र की प्रथम बैठक नहीं होती है । विधानसभा के विघटन के पश्चात् विधायकों की प्रतिनिधिक हैसियत समाप्त हो जाती है तथा, यथास्थिति, लोकसभा या विधानसभा के सदस्यों के प्रति मंत्रिमंडल का दायित्व भी समाप्त हो जाता है ।

42. विधानमंडल को आहूत करने, बैठक बुलाने, स्थगित करने, सत्रावसान करने या विघटन करने का जो कार्य है उसे आवश्यक रूप से अस्तित्वशील और कार्यशील किसी विधानमंडल के प्रति निर्देश्य है और इसका ऐसी विधानसभा से कुछ भी लेना-देना नहीं है जो अस्तित्व में नहीं रही है । यह सुस्थापित है कि किसी विघटित सदन को आहूत नहीं किया जा सकता या उसका सत्रावसान नहीं किया जा सकता और मामले को इस दृष्टि से देखते हुए अनुच्छेद 174(1) किसी विघटित विधानसभा को लागू नहीं होता है क्योंकि विघटन के पश्चात् कुछ भी शेष नहीं रहता है ।

धारणा

43. फिर भी अनुच्छेद 174 की धारणात्मक रूप से परीक्षा की जानी चाहिए । धारणात्मक रूप से अनुच्छेद 174 में एक अस्तित्वशील विधानमंडल के संबंध में उपबंध किए गए हैं । उक्त उपबंध का प्रयोजन और उद्देश्य किसी अस्तित्वशील विधानमंडल की बैठक कम-से-कम प्रत्येक छह मास में हों यह सुनिश्चित करने के लिए है क्योंकि केवल अस्तित्वशील विधानमंडल का सत्रावसान या विघटन किया जा सकता है । इस प्रकार अनुच्छेद 174 जोकि अपने-आप में एक संपूर्ण संहिता है और इस अनुच्छेद में केवल अस्तित्वशील विधानमंडल की बाबत उपबंध किया गया है ।

44. अनुच्छेद 174(1) से यह दर्शित होता है कि इस अनुच्छेद के अनुबंध किसी विघटित विधानमंडल को नहीं लागू होते हैं । इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 174 में यह विनिर्दिष्ट नहीं किया गया है कि दो सत्रों के बीच नियत की गई छह मास की अवधि के अंतराल से संबंधित उपबंध किसी नए विधानमंडल या समाप्त हो चुके विधानमंडल को भी लागू होंगे । यदि ऐसा होता तो अनुच्छेद 172 में परन्तुक अंतःस्थापित किए जाने की कोई आवश्यकता नहीं थी और उक्त परन्तुक का अंतःस्थापन निरर्थक और अनावश्यक हो जाता ।

45. इसके अतिरिक्त यदि यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि अनुच्छेद 174 किसी विघटित सदन को भी लागू होता है तो इसका यह अर्थ होगा कि अनुच्छेद 174(2) अनुच्छेद 174(1) से नियंत्रित है क्योंकि अनुच्छेद 174(1) के अनुरूप अनुच्छेद 174(2) के अधीन शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए । इसके अतिरिक्त यदि किसी सदन का अंतिम सत्र के पांचवें मास में विघटन कर दिया जाता है तब अनुच्छेद 174(1) की अपेक्षा का अनुपालन करने के लिए एक मास के भीतर निर्वाचन कराने होंगे । संविधान के रचयिताओं का ऐसा आशय नहीं था ।

46. इसके अतिरिक्त एक और अन्य पहलू है जिससे यह दर्शित होता है कि अनुच्छेद 174(1) विघटित विधानसभा को लागू नहीं होता है । यह निर्विवाद है कि संविधान के पश्चात् प्रत्येक विधानसभा पहली विधानसभा से अनन्य और अलग होती है और विघटित सदन का कोई भी कार्य नई विधानसभा में अग्रनीत नहीं किया जाता है । इसलिए अनुच्छेद 174(1) विघटित सदन के अंतिम सत्र को गठित नई विधानसभा को नहीं जोड़ता है ।

सत्रों की क्षिप्रता और निर्वाचनों की नियतकालिकता के बीच विभेद

47. अनुच्छेद 172 और 174 का परिशीलन करने से यह दर्शित होता है कि किसी अस्तित्वशील विधानसभा की बैठकों की क्षिप्रता और उपर्युक्त उपबंधों द्वारा शासित किसी विघटित विधानसभा की बाबत निर्वाचनों की नियतकालिकता के बीच विभेद है ।

48. जहां तक विधानसभा की बैठकों की क्षिप्रता का संबंध है उस बाबत छह मास का सिद्धांत आज्ञापक है और जहां तक निर्वाचन की नियतकालिकता का संबंध है इस बाबत अनुच्छेद 174 में अभिव्यक्त या विवक्षित रूप से छह मास के सिद्धांत को अधिकथित नहीं किया गया है । इसलिए यह निर्धारित नहीं किया जा सकता है कि विघटित सदन को अनुच्छेद 174 लागू होता है और इस अनुच्छेद में यह उपबंध भी किया गया है कि निर्वाचन आयोग को परिसीमा काल के भीतर नई विधानसभा का गठन करने के लिए नए निर्वाचन कराने चाहिए ।

क्या ब्रिटिश संसदीय परिपाटी के अधीन एक तरफ किसी अस्तित्वशील संसद का विघटन करने के पश्चात् और दूसरी तरफ नई संसद के आगामी सत्र की तारीख नियत करने के संबंध में जारी किए जाने वाले उद्घोषणा को संविधान के अनुच्छेद 174 में सम्मिलित किया गया है या नहीं ।

49. भारत संघ की ओर से श्री हरीश एन. साल्वे द्वारा यह दलील दी गई है कि भारतीय संविधान को संसदीय लोकतंत्र के वेस्ट मिनिस्टर की पद्धति के आधार पर अधिनियमित किया गया है और इसलिए ब्रिटिश परिपाटियों का अनुपालन करते हुए नियत समय के भीतर निर्वाचन कराए जाने चाहिए और संविधान के अनुच्छेद 174(1) से भी यही

इंगित होता है । यह दलील दी गई थी कि चूंकि संसद एकल सत्ता है जिसकी जिम्मेदारी सार्वजनिक हित को प्रभावी करने वाले विषयों के संबंध में बहस करना है और यह एक निरंतर प्रक्रिया है इसलिए सत्रों के बीच लम्बा अंतराल होना उचित नहीं है ।

50. विद्वान काउंसेल श्री हरीश एन. साल्वे ने अपनी इस दलील के समर्थन में कई पुस्तकों के कुछ पैराओं का अवलम्ब लिया है जोकि निम्नलिखित है :–

एरस्किन में ट्रिटाइज ऑन दी ला, प्रिविलेजेज, प्रोसिडिंग्स एण्ड यूजेज ऑफ पार्लियामेंट 21वां संस्करण : "किसी संसद की कालावधि पांच वर्ष से अधिक नहीं होती है और उद्घोषणा के जारी किए जाने और समाप्त हो जाने से यह कालचक्र आरंभ होता है । ऐसे किसी उद्घोषणा से एक तरफ तो अस्तित्वशील संसद विघटित हो जाती है और दूसरी तरफ नई संसद का निर्वाचन करने के लिए और उसकी बैठक का दिन और स्थान नियत करने के आदेश जारी किया जाता है । इस अवधि के बीच यद्यपि संसद का विघटन किए जाने और उसकी उत्तरवर्ती संसद की बैठक के बीच एक अंतराल होता है जिसके दौरान कोई भी संसद अस्तित्व में नहीं रहती है किन्तु संसद की निरंतरता बनाए रखने का जो सिद्धांत है उसे सभी व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए इस तथ्य द्वारा सुनिश्चित किया गया है कि एक ही उद्घोषणा से संसद का विघटन किया जाता है और उसी उद्घोषणा में एक नई संसद का निर्वाचन और उसकी बैठक कराएं जाने के संबंध में उपबंध भी किया जाता है । कोई सत्र, सत्रावसान या विघटन या उसका सत्रावसान करने के पश्चात् किसी संसद की बैठक के बीच की समयावधि होती है ।"

जे.ए.जी. ग्रिफिथ एण्ड माइकल रॉयल, पार्लियामेंट : फंक्शंस, प्रैक्टिस एण्ड प्रोसिजर्स, 1989 : "प्रत्येक साधारण निर्वाचन के पश्चात् प्रभुत्वसंपन्न द्वारा संसद आहूत की जाती है और किसी संसद की अवधि उसकी पहली बैठक से तब तक होती है जब तक की प्रभुत्वसंपन्न द्वारा आगामी साधारण निर्वाचन से पहले संसद का विघटन नहीं कर दिया जाता है ।

संसद की निरंतरता को बनाए रखने के लिए उसे उद्घोषणा में संसद का विघटन किए जाने का आदेश करने के पश्चात् नई संसद का निर्वाचन कराने के लिए और वेस्ट मिनिस्टर के अनुसार किसी विनिर्दिष्ट तारीख को संसद का सदन आहूत करने के लिए उसी उद्घोषणा में ये दोनों आदेश किए जाते हैं । रिप्रजेंटेशन ऑफ पीपुल्स ऐक्ट, 1918 (लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1918) की धारा 21(3) के अधीन उद्घोषणा की तारीख और संसद की बैठक के बीच का अंतराल 20 दिन से कम नहीं होना चाहिए यद्यपि इस अवधि को उद्घोषणा द्वारा और आगे बढ़ाया जा सकता है । इस अंतराल के दौरान साधारण निर्वाचन कराए जाने चाहिए ।"

51. विद्वान काउंसेल श्री हरीश एन. साल्वे द्वारा ऊपर निर्दिष्ट किए जिन पैराओं का अवलंब लिया गया है वे लोकसभा या विधानसभा का गठन करने के लिए निर्वाचन कराए जाने के संबंध में भारतीय संदर्भ में बिल्कुल अनुपयुक्त हैं । उपरोक्त पैराओं से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि ब्रिटिश संसदीय पद्धति के अधीन मोनार्क को संसद का विघटन किए जाने का अनन्य अधिकार है और मोनार्क उसी उद्घोषणा द्वारा निर्वाचन के लिए और उत्तरवर्ती संसद की बैठक के लिए भी उपबंध कर सकता है जबकि भारतीय संविधान के अधीन ऐसा नहीं है । भारतीय संविधान के अधीन निर्वाचन आयोग को अनुच्छेद 324 के अधीन निर्वाचन कराने, पर्यवेक्षण करने, नियंत्रण और निदेश का कार्य सुपुर्द किया गया है और इसलिए ब्रिटिश परिपाटी को यहां पर लागू नहीं किया जा सकता । हमारी लोकतंत्र पद्धति में केवल निर्वाचन आयोग को यह प्राधिकार है कि वह, यथास्थिति, नई लोकसभा या विधानसभा का गठन करने के लिए नए निर्वाचन कराए । तथापि, यह सत्य है कि वर्ष 2000 में पोलिटिकल पार्टीज, इलेक्शंस एण्ड रिफ्रेन्डम ऐक्ट, 2000 (राजनीतिक दल, निर्वाचन और जनमत संग्रह अधिनियम, 2000) द्वारा इंग्लैड में इलेक्टोरल कमीशन(निर्वाचन आयोग) का गठन किया गया है किन्तु इसमें जिन परिपाटियों का अवलंब लिया गया है वे परिपाटियां वर्ष 2000 से पहले की हैं तथा निर्वाचन आयोग को हाउस ऑफ कामन्स का गठन करने के लिए निर्वाचन कराने के लिए तारीख

नियत करने की शक्ति भी नहीं है । इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि अनुच्छेद 174 में ब्रिटिश परिपाटियां प्रतिबिम्बित होती हैं । इसका एक और अन्य कारण भी है कि क्यों नई गठित संसद के लिए ब्रिटिश परिपाटी के अनुसार तारीख नियत किए जाने की परिपाटी को भारत में लागू नहीं किया जा सकता है क्योंकि ब्रिटिश संसदीय पद्धति के अधीन संसद की निरंतरता बनी रहती है जबकि भारत में यदि एक बार संसद का विघटन कर दिया जाए तो विघटित संसद में जो कार्य किया जा रहा होता है वह समाप्त हो जाता है और उस कार्य को लोकसभा में पुनरुज्जीवित नहीं किया जा सकता ।

क्या सत्रावसान, स्थगन और विघटन की बाबत ब्रिटिश संसदीय परिपाटी और भारतीय संविधान के अधीन संसदीय परिपाटी के बीच कोई फर्क है या नहीं ।

52. भारत संघ की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान काउंसेल श्री हरीश एन. साल्वे ने इस संदर्भ में एरस्किन में पार्लियामेंट्री प्रैक्टिस 20वां संस्करण से ब्रिटिश परिपाटियों के अधीन सत्रावसान, स्थगन और विघटन की बाबत निम्नलिखित पैरा का अवलम्ब लिया है और यह दलील दी है कि सत्र वह अवधि है जो सत्रावसान या विघटन के पश्चात् संसद की बैठकों के बीच की अवधि होती है । विद्वान काउंसेल के अनुसार संसद की निरंतरता बनी रहती है और उसकी श्रृंखला टूटती नहीं है । सारतः उन्होंने यह दलील दी है कि किसी सदन का सत्रावसान या विघटन का परिणाम एक जैसा है और इसलिए विधानसभा के विघटन के पश्चात् भी अनुच्छेद 174(1) नई विधानसभा को लागू होता है ।

सत्रावसान

सत्रावसान का यह प्रभाव यह होता है कि संसद का सारा चालू कार्य एकदम समाप्त हो जाता है । न केवल संसद की बैठक समाप्त हो जाती है अपितु कॉमन्स द्वारा चलाए जा रहे महाभियोग और हाउस ऑफ लार्ड्स के समक्ष लंबित अपीलों के सिवाय सभी लंबित कार्यवाहियां अभिखंडित हो जाती हैं । इसलिए प्रत्येक विधेयक को सत्रावसान के पश्चात् नए सिरे से इस प्रकार पुरःस्थापित किया जाना चाहिए मानो कि उसे पहले पुरःस्थापित नहीं किया गया था ।

स्थगन

क्रमशः प्रत्येक हाउस को स्थगन करने की एकमात्र शक्ति है यद्यपि कभी-कभी व्यक्तिगत रूप से क्राउन अपने प्रसादपर्यन्त संदेश, आदेश(कमीशन) या उद्घोषणा द्वारा दोनों हाउसों(सदनों) को स्थगित कर सकता है और कुछ मामलों में ऐसा स्थगन सत्रावसान से बिल्कुल अलग होता है । किन्तु, ऐसा कभी-भी नहीं हुआ है कि क्राउन की संसूचना का अनादर करके हाउस को स्थगन करने से इनकार कर दिया गया हो ।

विघटन

क्वीन भी विघटन द्वारा संसद के अस्तित्व को समाप्त कर सकती है किन्तु वह संसद की अवधि की परिभाषा करने के लिए बिल्कुल भी स्वतंत्र नहीं है । संसद को किसी कतिपय दिवस को उसका सत्रावसान करने के पश्चात् क्वीन के हस्ताक्षर से जारी की गई एक उद्घोषणा द्वारा संसद का सामान्यतः विघटन किया जाता है किन्तु ऐसी कोई उद्घोषणा उस समय जारी की जाएगी जब दोनों हाउसों को स्थगित कर दिया गया हो । प्रिवी काउंसिल की सलाह से क्वीन द्वारा यह उद्घोषणा जारी की जाती है और उसमें यह घोषणा की जाती है कि क्वीन ने लार्ड चांसलर ऑफ ग्रेट ब्रिटेन और सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर नार्दर्न आयरलैंड को सम्यक् प्ररूप में और विधि के अनुसार नई संसद का गठन करने के लिए आदेश जारी किए हैं और विधि के सम्यक् अनुक्रम में इन आदेशों को वापस लिया जा सकता है ।

53. विद्वान काउंसेल श्री हरीश एन. साल्वे द्वारा उपर्युक्त जिन पैराओं का अवलंब लिया गया है वे पैरा भारतीय संविधान के संदर्भ में बिल्कुल भी लागू नहीं होते हैं । अनुच्छेद 85(2) के अधीन जब प्रधानमंत्री की सलाह पर राष्ट्रपति सदन का सत्रावसान करते हैं तब सदन के किसी सत्र की समाप्ति होती है और इसे सत्रावसान कहा जाता

है । जब सदन का सत्रावसान किया जाता है तब सदन के समक्ष पड़ी हुई सभी लंबित कार्यवाहियां अभिखंडित नहीं होती हैं और लंबित विधेयक व्यपगत नहीं होते हैं । सदन का सत्रावसान किसी भी समय किया जा सकता है उसका सत्रावसान तब भी किया जा सकता है जब सदन का स्थगन हो गया हो या सदन की बैठक भी चल रही हो । सदन के स्थगन से बैठक या कार्यवाहियों को मुल्तवी अनुध्यात है और सदनों में से किसी भी सदन को एक और अन्य विनिर्दिष्ट तारीख को पुनः समेवत किया जा सकता है । किसी सत्र के चालू रहने की अवधि के दौरान सदन का स्थगन एक या एक से अधिक दिन के लिए किया जा सकता है । सदन का स्थगन अनिश्चितकाल के लिए भी किया जा सकता है । जब किसी सदन का स्थगन किया जाता है तब लंबित कार्यवाहियां या विधेयक व्यपगत नहीं होते हैं । जहां तक लोकसभा या राज्य विधानसभा में से किसी के विघटन का संबंध है, उनका विघटन, यथास्थिति, अनुच्छेद 85(2) या अनुच्छेद 174(2) के अधीन उनकी पहली बैठक के लिए नियत की गई तारीख से पांच वर्ष की अवधि के पश्चात् किया जाता है । किसी अस्तित्वशील या कार्यशील लोकसभा या विधानसभा का ही विघटन किया जा सकता है । लोकसभा या राज्य विधानसभा का विघटन करने के पश्चात् वह अस्तित्व में नहीं रहती और राष्ट्रपति द्वारा भी उन्हें पुनरुज्जीवित नहीं किया जा सकता है । जब लोकसभा या राज्य विधानसभा का विघटन कर दिया जाता है तब उसके समक्ष पड़ी हुई सभी लंबित कार्यवाहियां समाप्त हो जाती हैं और सभी लंबित विधेयक व्यपगत हो जाते हैं तथा नए निर्वाचन के पश्चात् गठित की गई लोकसभा या राज्य विधानसभा के समक्ष ऐसी कार्यवाहियों और विधेयकों को अग्रनीत नहीं किया जाता है ।

54. ऊपर उल्लिखित जिन पैराओं का अवलंब लिया गया है, उनसे यह स्पष्ट है कि विघटन और सत्रावसान की बाबत ब्रिटिश संसदीय परंपरा और भारतीय संविधान के अधीन भारतीय परंपरा के बीच फर्क है । भारतीय संविधान के अधीन विघटन से किसी विधायी निकाय की समाप्ति हो जाती है और उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है । दूसरी तरफ सत्रावसान से केवल किसी सत्र का अंत होता है और इससे एक और अन्य सत्र को बुलाने से तब तक प्रवरित नहीं किया जाता जब तक कि ऐसा संयोग न बने कि विधायी अवधि ही समाप्त हो जाए । दूसरे शब्दों में, सत्रावसान से विघटन की तरह विधायी निकाय का अस्तित्व समाप्त नहीं होता है अपितु अंतिम सत्र से यह निरंतर बना रहता है और विघटन द्वारा ही इसे समाप्त किया जा सकता है । सत्रावसान और विघटन के अर्थ में यही फर्क है । सत्रावसान या विघटन से जहां तक लंबित विधायी कार्य का संबंध है उसका प्रभाव यह है कि इंग्लैंड में सत्रावसान से संसद में लंबित सभी कार्य समाप्त हो जाते हैं जबकि भारतवर्ष में ऐसा नहीं है । अनुच्छेद 107 और 196 के अधीन विनिर्दिष्ट रूप से यह उपबंध किया गया है कि मात्र सत्रावसान से उस समय लंबित विधेयक व्यपगत नहीं होंगे । संविधान के अनुच्छेद 107(5) और 196(5) के अधीन केवल विघटन किए जाने के पश्चात् ही लंबित बिल व्यपगत होंगे । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इंग्लैंड में सत्रावसान या विघटन के बीच वास्तव में कोई फर्क नहीं है जबकि भारतीय संविधान के अधीन विनिर्दिष्ट रूप से उनके बीच जो अंतर है वह अनुध्यात किया गया है । इंग्लैंड में विघटन किए जाने का कोई विशेष या अतिरिक्त परिणाम नहीं होता है और सत्रावसान का जो प्रभाव है वही विघटन का प्रभाव है । इसलिए हाउस ऑफ कामन्स को आहूत, सत्रावसान और विघटन करने की बाबत जो ब्रिटिश परंपरा है वह भारतीय परिवेश में अधिक सुसंगत नहीं है ।

55. ऊपर जो चर्चा की गई है उससे अप्रतिरोध्य रूप से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अनुच्छेद 174(1) न तो किसी विघटित सदन को लागू होता है और न ही इसमें यह उपबंध किया गया है कि नई विधानसभा का गठन करने के लिए कितनी अवधि के भीतर निर्वाचन कराया जाए ।

क्या 'सदन' अभिव्यक्ति एक स्थायी निकाय है और संविधान के अनुच्छेद 85 और 174 के अधीन लोकसभा या विधानसभा से अलग है ?

56. भारत संघ की ओर से विद्वान काउंसेल श्री हरीश एन. साल्वे ने इसके पश्चात् यह दलील दी है कि अनुच्छेद 174 के अधीन विधानसभा का विघटन किया जाता है जबकि सदन का सत्रावसान किया जाता है । यदि किसी विधानसभा का विघटन कर दिया गया है तब भी सदन अस्तित्व में रहता है । जब तक नई लोकसभा या नई

विधानसभा का गठन नहीं किया जाता है तब तक अनुच्छेद 94 के अधीन लोकसभा का अध्यक्ष और अनुच्छेद 179 के अधीन राज्य विधानसभा का अध्यक्ष अपने पद पर बना रहता है । इस आधार पर आगे यह दलील दी गई थी कि नई विधानसभा का गठन करने के लिए नए सिरे से निर्वाचन विघटित विधानसभा के अंतिम सत्र से छह मास के भीतर करा लिए जाने चाहिए ।

57. प्रथमतः यह दलील काफी अच्छी लगती है किन्तु इस मामले में गहराई से विचार करने के पश्चात् इसमें इसके पश्चात् कथित कारणों के आधार पर हमें इसमें कोई सार प्रतीत नहीं होता है ।

58. किसी कानून या संविधान के पाठ का प्रारूप तैयार करना केवल एक कला नहीं है अपितु यह एक कौशल भी है । यह निर्विवाद है कि एक अच्छे विधान का पाठ वह होता है जोकि स्पष्ट, साधारण, असंदिग्ध, और प्रमित हो तथा शब्दों का दोहराया न गया हो या विसंगत भाषा का प्रयोग न किया गया हो । किसी कानून या संविधान का प्रारूपण करने के संदर्भ में किसी प्रारूपकार की कुशलता उसके द्वारा उपयोग किए गए उपयुक्त शब्द रचना संक्षेप में होनी चाहिए और उसमें असंगत शब्दों का प्रयोग न किया गया हो और शब्दों को दोहराए जाने से भी बचना चाहिए । ऐसा प्रतीत होता है कि भारत सरकार अधिनियम, 1915, भारत सरकार अधिनियम, 1919 और भारत सरकार अधिनियम, 1935 को प्रारूपित करते समय उपर्युक्त सिद्धांतों को ध्यान में रखा गया था । भारत के संविधान के प्रारूपकार ने भी इसके प्रारूप तैयार करने में संक्षिप्त शब्दों का प्रयोग किया है और शब्द बिल्कुल स्पष्ट हैं तथा संविधान के उपबंधों में सांविधानिक संस्थाओं के लिए उपबंध करते समय ऐसे शब्दों का प्रयोग किया गया है जोकि असंदिग्ध हैं ।

59. इस पृष्ठभूमि में जहां भी संविधान के रचयिताओं ने राज्य सभा और लोकसभा या राज्य विधान परिषद् और विधानसभा के लिए शक्ति, कर्तव्य या कृत्यों को प्रदत्त करने की इच्छा व्यक्त की है वहां उन्होंने इसी प्रकार के उपबंध किए हैं और संविधान के भाग 5 अध्याय 2 और भाग 6 अध्याय 3 के अधीन इन दोनों संस्थाओं को 'दो सदन', 'प्रत्येक सदन', 'कोई एक सदन' और 'दोनों सदन' के रूप में निर्दिष्ट किया है । दूसरी तरफ संविधान के रचयिता जहां लोकसभा या राज्य सभा को शक्तियां, कृत्य और कर्तव्य प्रदान करना चाहते थे वहां उन्होंने लोकसभा या राज्य सभा में से किसी एक के लिए अनन्य उपबंध किए हैं और संविधान के रचयिताओं ने उक्त संस्थाओं को या तो राज्य सभा या लोकसभा के रूप में निर्दिष्ट किया है । इसी प्रकार संविधान के रचयिता जब विधान परिषद् या विधानसभा को शक्ति, कृत्य, कर्तव्य प्रदान करना चाहते थे या दोनों के लिए एक जैसे उपबंध बनाना चाहते थे वहां उन्होंने दोनों संस्थाओं को 'सदन', 'कोई सदन', 'दोनों सदन', 'प्रत्येक सदन' के रूप में एक निर्दिष्ट किया है और जहां विधान परिषद् नहीं है और विधानसभा को अनन्य शक्ति प्रदान की है वहां उन्होंने विधानसभा के रूप में निर्दिष्ट किया है । प्रारूपण करने की उपर्युक्त पद्धति को भारत सरकार अधिनियम, 1915, 1919 और 1935 से लिया गया है जिसके संबंध में हम इसमें इसके पश्चात् उल्लेख करेंगे ।

60. भारत सरकार अधिनियम, 1915 की धारा 63 में यह उपबंध किया गया है कि इंडियन लेजिसलेचर (भारतीय विधानमंडल) गवर्नर जनरल और दो चेम्बरों अर्थात् काउंसिल ऑफ स्टेट और लेजिसलेटिव असेम्बली से मिलकर बनेगा । धारा 63(घ)(1) (क) में यथाउपबंध किया गया है कि विधानमंडल के चेम्बरों में से किसी चेम्बर को गवर्नर जनरल द्वारा आहूत/विघटित किया जाएगा । 'चेम्बर' अभिव्यक्ति 'सदन' अभिव्यक्ति के सदृश है । अधिनियम की धारा 63घ (1)(ग) के अधीन किसी भी चेम्बर के विघटन के पश्चात् गवर्नर जनरल से यह अपेक्षा की गई है कि वह चेम्बर के आगामी सत्र के लिए एक तारीख नियत करेगा जोकि विघटन की तारीख से छह मास की अवधि से अधिक या सेक्रेटरी ऑफ स्टेट की मंजूरी से नौ मास की अवधि से अधिक की नहीं होगी । चूंकि दोनों 'चेम्बर' का विघटन किया जा सकता था इसलिए धारा 63घ (1)(ग) के अधीन काउंसिल ऑफ स्टेट और लेजिसलेटिव असेम्बली को 'प्रत्येक चेम्बर' के रूप में निर्दिष्ट किया गया है न कि 'काउंसिल ऑफ स्टेट या लेजिसलेटिव असेम्बली' के रूप में । इससे यह दर्शित होता है कि अभिव्यक्ति 'प्रत्येक चेम्बर' काउंसिल ऑफ स्टेट्स और लेजिसलेटिव असेम्बली के रूप में निर्देश्य है । भारत सरकार अधिनियम, 1919 के अधीन भी भारतीय विधानमंडल गवर्नर जनरल और दो चेम्बरों

अर्थात् काउंसिल ऑफ स्टेट और लेजिसलेटिव असेम्बली से मिलकर गठित होता था । अधिनियम की धारा 21(1)(क) के अधीन गवर्नर जनरल द्वारा विधानमंडल के 'प्रत्येक चेम्बर' का विघटन किया जा सकता था और धारा 21(1)(ग) के अधीन यह उपबंध किया गया था कि किसी भी चेम्बर के विघटन के पश्चात् गवर्नर जनरल आगामी सत्र के लिए एक तारीख नियत करेगा जोकि विघटन की तारीख के पश्चात् छह मास से अधिक नहीं होगी या सेक्रेटरी ऑफ स्टेट की मंजूरी से नौ मास से अधिक नहीं होगी । यह उपबंध भारत सरकार अधिनियमं, 1915 के समान है । इस अधिनियम में भी हमने यह पाया है कि चूंकि दोनों चेम्बर अर्थात् काउंसेल ऑफ स्टेट और लेजिसलेटिव असेम्बली का विघटन किया जा सकता था इसलिए धारा 21(1) (ग) में काउंसिल ऑफ स्टेट या लेजिसलेटिव असेम्बली दोनों को 'प्रत्येक चेम्बर' के रूप में निर्दिष्ट किया गया है न कि काउंसिल ऑफ स्टेट या लेजिसलेटिव असेम्बली के रूप में ।

61. भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 18 में यह उपबंध किया गया था कि फेडरल लेजिसलेचर (परिसंघीय विधानमंडल) हीज मेजेस्टी का प्रतिनिधित्व करते हुए गवर्नर जनरल और दो चेम्बर(सदन) जिन्हें क्रमशः 'काउंसिल ऑफ स्टेट' और 'फेडरल असेम्बली' कहा जाएगा, से मिलकर बनेगा । अधिनियम, 1935 की धारा 18 की उपधारा (4) के अधीन काउंसिल ऑफ स्टेट एक स्थायी निकाय बना दिया गया था जिसका विघटन नहीं होना था किन्तु प्रथम अनुसूची में अंतर्विष्ट इस निमित्त उपबंध के अनुसार उसके सदस्यों में से कम-से-कम एक-तिहाई सदस्य प्रत्येक तीसरे वर्ष में निवृत्त हो जाएंगे । भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 19 की उपधारा (2), जोकि भारत के संविधान के अनुच्छेद 85 के समान है, उसमें यह उपबंध किया गया है कि गवर्नर जनरल अपने विवेकाधिकार से चेम्बरों या किसी भी चेम्बर का ऐसे समय, जो वह ठीक समझे, अधिवेशन करने के लिए आहूत कर सकेगा, चेम्बर(सदन) का सत्रावसान कर सकेगा और फेडरल असेम्बली का विघटन कर सकेगा । इस प्रकार चेम्बरों का विघटन नहीं किया गया है किन्तु फेडरल असेम्बली का विघटन किया गया है और इसका कारण यह है कि काउंसिल ऑफ स्टेट को एक स्थायी निकाय बना दिया गया था जिसका विघटन नहीं किया जा सकता था और इसलिए फेडरल असेम्बली, जिसका विघटन किया जा सकता था, उसके संबंध में विनिर्दिष्ट रूप से निर्दिष्ट किया गया है ।

62. भारत सरकार अधिनियम, 1935 में एक प्रोविन्सियल लेजिसलेचर था और इस अधिनियम की धारा 60 में यह उपबंध किया गया है, एक प्रोविन्सियल लेजिसलेचर हीज मेजेस्टी का प्रतिनिधित्व करते हुए गवर्नर जनरल और मद्रास, बम्बई और बंगाल तथा यूनाइटेड प्रोविन्सेस बिहार और असम के दो चेम्बर होंगे, से मिलकर बनेगा और अन्य प्रोविन्सेस में एक चेम्बर होगा । इस धारा की उपधारा (2) में आगे यह उपबंध किया गया है कि जहां प्रोविन्सियल लेजिसलेचर के दो चेम्बर हैं उन्हें लेजिसलेटिव काउंसिल और लेजिसलेटिव असेम्बली कहा जाएगा और जहां एक चेम्बर है उसे लेजिसलेटिव असेम्बली कहा जाएगा । धारा 61 की उपधारा (3) में यह उपबंध किया गया है कि प्रत्येक लेजिसलेटिव काउंसिल एक स्थायी निकाय होगा जिसका विघटन नहीं होगा । इस अधिनियम की धारा 62 की उपधारा (2) में यह उपबंध किया गया है कि गवर्नर जनरल अपने विवेकाधिकार से समय-समय पर चेम्बरों या किसी भी चेम्बर को आहूत कर सकेगा, चेम्बर या चेम्बरों का सत्रावसान कर सकेगा और लेजिसलेटिव असेम्बली का विघटन कर सकेगा । यह उपबंध भारत के संविधान के अनुच्छेद 174 के समान है । इस प्रकार यह बिल्कुल स्पष्ट है कि चूंकि लेजिसलेटिव काउंसिल एक स्थायी निकाय बनाया गया है और लेजिसलेटिव असेम्बली का विघटन किया जा सकता है इसलिए लेजिसलेटिव असेम्बली के लिए 'चेम्बर' अभिव्यक्ति का प्रयोग नहीं किया गया है अपितु अभिव्यक्त रूप से लेजिसलेटिव असेम्बली का उल्लेख किया गया है ।

63. अब हम भारत के संविधान पर विचार करेंगे । संविधान का अनुच्छेद 85 भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 19 के समान है । इसी प्रकार अनुच्छेद 174 भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 62 के समान हैं । भारत के संविधान के अनुच्छेद 79 में यह उपबंध किया गया है कि संघ के लिए एक संसद होगी जो राष्ट्रपति और दो सदनों से मिलकर बनी होगी जिनके नाम राज्य सभा और लोकसभा होंगे । अनुच्छेद 83 में यह उपबंध किया गया है कि राज्य सभा का विघटन नहीं होगा । अनुच्छेद 85 में यह उपबंध किया गया है कि राष्ट्रपति समय-समय पर

सदनों या किसी भी सदन का सत्रावसान कर सकेंगे और ला का विघटन कर सकेंगे । यहां भी चूंकि राज्य सभा एक स्थायी निकाय है और उसका विघटन नहीं किया जा सकता है इसलिए 'किसी सदन' अभिव्यक्ति के स्थान पर 'लोकसभा' अभिव्यक्ति का प्रयोग किया गया है और लोकसभा का विघटन किया जा सकता है । इसी प्रकार संविधान के अनुच्छेद 168, अनुच्छेद 172 और अनुच्छेद 174 के अधीन राज्य विधानमंडल के लिए भी उपबंध किए गए हैं ।

64. उपर्युक्त उपबंधों से यह स्पष्ट है कि 'सदनों', 'दोनों सदन' और 'किसी सदन' और 'सदन' अभिव्यक्तियां राज्य सभा और लोकसभा के रूप में ज्ञात संस्थाओं के पर्यायवाची हैं और ये अभिव्यक्ति आन्तः परिवर्तनीय है ।

65. इस विषय की एक और अन्य दृष्टिकोण से भी परीक्षा की जानी चाहिए । अनुच्छेद 86 के अधीन राष्ट्रपति को किसी एक सदन में या एक साथ समवेत दोनों सदनों में अभिभाषण करने के लिए विनिर्दिष्ट रूप से सशक्त किया गया है । इसी प्रकार अनुच्छेद 87 के अधीन राष्ट्रपति को एक साथ समवेत संसद के दोनों सदनों में अभिभाषण करने के लिए सशक्त किया गया है । अनुच्छेद 88 के अधीन प्रत्येक मंत्री और भारत के महान्यायवादी को यह अधिकार होगा कि वह किसी भी सदन में बोले या उसकी कार्यवाहियों में भाग ले । अनुच्छेद 98 में यह उपबंध किया गया है कि संसद के प्रत्येक सदन का पृथक् सचिवीय कर्मचारिवृन्द होगा और इसके खंड (2) के अधीन संसद को, संसद के प्रत्येक सदन के सचिवीय कर्मचारिवृन्द में भर्ती का और सेवा की शर्तों का विनियमन करने के लिए विधि बनाने के लिए सशक्त किया गया है । अनुच्छेद 99 में यह उपबंध किया गया है कि संसद के प्रत्येक सदन का प्रत्येक सदस्य अपना स्थान ग्रहण करने से पहले, राष्ट्रपति या उसके द्वारा इस निमित नियुक्त व्यक्ति के समक्ष, तीसरी अनुसूची में इस प्रयोजन के लिए दिए गए प्ररूप के अनुसार शपथ लेगा या प्रतिज्ञान करेगा । अनुच्छेद 100 में यह उपबंध किया गया है कि प्रत्येक सदन की बैठक में या सदन की संयुक्त बैठक में सभी प्रश्नों का अवधारण, अध्यक्ष को अथवा सभापति या अध्यक्ष के रूप में कार्य करने वाले व्यक्ति को छोड़कर, उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों के बहुमत से किया जाएगा । अनुच्छेद 101 में यह उपबंध किया गया है कि कोई व्यक्ति संसद के दोनों सदनों का सदस्य नहीं होगा । इसी प्रकार अनुच्छेद 102 में 'संसद के किसी सदन का' अभिव्यक्ति का प्रयोग किया गया है । अनुच्छेद 103 में भी 'संसद के किसी सदन का' अभिव्यक्ति का प्रयोग किया गया है । अनुच्छेद 104, 106 और 107 में भी 'संसद के किसी सदन का' अभिव्यक्ति का प्रयोग किया गया है । इससे यह दर्शित होता है कि संविधान के रचयिता जहां कहीं भी राज्य सभा और लोकसभा दोनों के लिए एक समान उपबंध करना चाहते थे वहां उन्होंने 'सदन', 'सदनों में से किसी सदन का', 'दोनों सदन' और 'सदनों' शब्दों का प्रयोग संक्षिप्तता बनाए रखने के प्रयोजन के लिए किया है और बार-बार राज्य सभा और लोकसभा शब्दों का प्रयोग करने से बचने के लिए उन्होंने ऐसा किया है ।

66. संविधान के भाग 6 के अध्याय 3 के अधीन राज्य विधानमंडल से संबंधित उपबंधों में भी ऐसे ही सदृश उपबंध किए गए हैं । अनुच्छेद 168 में यह उपबंध किया गया है कि प्रत्येक राज्य के लिए एक विधानमंडल होगा जो राज्यपाल और बिहार, महाराष्ट्र, कर्नाटक और उत्तर प्रदेश राज्यों में दो सदनों से और अन्य राज्यों में एक सदन से मिलकर बनेगा । इस धारा के उपखंड (2) में यह और उपबंध किया गया है कि जहां किसी राज्य के विधानमंडल के दो सदन हैं वहां एक का नाम विधान परिषद् और दूसरे का नाम विधानसभा होगा और जहां केवल एक सदन हैं वहां उसका नाम विधानसभा होगा । अनुच्छेद 172 के उपखंड (2) में यह उपबंध किया गया है कि किसी राज्य की विधान परिषद् एक स्थायी निकाय है जिसका विघटन नहीं होगा । अनुच्छेद 174(1) के अधीन राज्यपाल को, राज्य के विधानमंडल के सदन या प्रत्येक सदन को ऐसे समय और स्थान पर जो वह ठीक समझे, अधिवेशन के लिए आहूत करने के लिए सशक्त किया गया है, किन्तु उसके एक सत्र की अंतिम बैठक और आगामी सत्र की प्रथम बैठक के लिए नियत तारीख के बीच छह मास का अंतर नहीं होगा । अनुच्छेद 174 के खंड (2) के अधीन राज्यपाल को सदन का या किसी सदन का सत्रावसान करने और विधानसभा का विघटन करने की शक्ति प्रदत्त की गई है । यहां भी हमने यह पाया है कि चूंकि विधान परिषद् एक स्थायी निकाय है और उसका विघटन नहीं किया जा सकता है इसलिए अनुच्छेद 174 के खंड (2)(ख) में 'सदनों' अभिव्यक्ति का प्रयोग नहीं किया गया है ।

67. इसी प्रकार राज्य विधानमंडल की दशा में संविधान रचयिताओं ने 'किसी सदन', 'दोनों सदन' और 'विधानमंडल के सदन' अभिव्यक्तियों का प्रयोग वहां किया है जहां उनका आशय विधान परिषद् और विधानसभा दोनों के संबंध में समरूप उपबंधों को लागू करने का है ।

68. अनुच्छेद 175 के अधीन राज्यपाल को 'एक साथ समवेत दोनों सदनों' में अभिभाषण करने के लिए सशक्त किया गया है और उन्हें राज्य के 'विधानमंडल के सदनों' को संदेश भेजने की भी शक्ति है । अनुच्छेद 176 के अधीन राज्यपाल को 'एक साथ समवेत दोनों सदनों' में विशेष अभिभाषण करने के संबंध में उपबंध किया गया है । अनुच्छेद 177 में मंत्रियों और महाधिवक्ता को 'दोनों सदनों' की कार्यवाहियों में बोलने और भाग लेने के अधिकार की बाबत उपबंध किया गया है । अनुच्छेद 187 में राज्य विधानमंडल के सचिवालय के संबंध में उपबंध किए गए हैं और इसमें 'सदन', 'प्रत्येक सदन', 'दोनों सदनों के लिए सम्मिलित' और 'सदनों' अभिव्यक्तियों का प्रयोग किया गया है । अनुच्छेद 189 के शीर्ष में 'सदनों में मतदान, सदनों की शक्ति' का उल्लेख किया गया है । अनुच्छेद 190 में भी 'दोनों सदन' निर्दिष्ट किए गए हैं । अनुच्छेद 196 में 'किसी सदन में', 'दोनों सदनों' और 'सदनों' अभिव्यक्तियों का प्रयोग विधानसभा और विधान परिषद् दोनों को निर्दिष्ट करते समय किया गया है । इसी प्रकार अनुच्छेद 197(2) में भी 'राज्य के विधानमंडल के सदनों' द्वारा किसी विधेयक को पारित करने के संबंध में उपबंध किए गए हैं । अनुच्छेद 202 और 209 में भी विधानसभा और विधान परिषद् दोनों को निर्दिष्ट करते हुए 'सदनों' अभिव्यक्ति का प्रयोग किया गया है ।

69. ये उपबंध अनुच्छेद 169, 170, 171,178, 179, 180, 181, 182, 183, 184, 185 और अनुच्छेद 186 से भिन्न हो सकते हैं क्योंकि इन अनुच्छेदों में अनन्य रूप से या तो विधान परिषद् या विधानसभा के संबंध में उपबंध किए गए हैं । इसी प्रकार अनुच्छेद 197 और 198 में भी विधानसभा और विधान परिषद् का उल्लेख अलग-अलग किया गया है । इस प्रकार संविधान रचयिताओं ने विनिर्दिष्ट रूप से जहां आवश्यक था वहां विधानसभा और विधान परिषद् को निर्दिष्ट किया है । इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 188, 191 और 193 में इन अनुच्छेदों में विनिर्दिष्ट क्रमशः विषयों के संबंध में उपबंध करते समय इनमें विधानसभा या विधान परिषद् दोनों का अलग-अलग उल्लेख किया गया है । चूंकि संविधान को पूरे देश के लिए प्रारूपित किया जा रहा था न कि विशिष्ट राज्य के लिए इसलिए संविधान निर्माताओं ने यह उचित समझा कि जिन राज्यों में केवल विधानसभा है और विधान परिषद् नहीं है उन राज्यों के संबंध में भ्रम न हो इसलिए उन्होंने अलग-अलग विनिर्दिष्ट रूप से विधानसभा या विधान परिषद् को निर्दिष्ट करना उचित समझा ।

70. यहां पर यह उल्लेख किया जा सकता है कि अनुच्छेद 9 और 188 में प्रयुक्त शब्द रचना में फर्क है । इन अनुच्छेदों में सदस्यों के शपथ और प्रतिज्ञान के संबंध में उपबंध किए गए हैं । अनुच्छेद 103 और 191 में सदस्यों की निरर्हता के संबंध में उपबंध किया गया है और अनुच्छेद 104 और 193 में शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने से पहले या अर्हित न होते हुए या निरर्हित किए जाने पर बैठने और मत देने की शास्ति के संबंध में उपबंध किए गए हैं । अनुच्छेद 99, 103 और 104 में 'किसी सदन' अभिव्यक्ति का प्रयोग किया गया है जबकि अनुच्छेद 188, 191 और 193 में 'विधानसभा या विधान परिषद्' का उल्लेख किया गया है । शब्द रचना में इस प्रकार जो फर्क है उसका इस तथ्य के आधार पर स्पष्टीकरण किया जा सकता है कि ऐसे कई राज्य हो सकते हैं जहां विधान परिषद् न हों और इसलिए इस संदर्भ में 'किसी सदन में' अभिव्यक्ति का प्रयोग अनुच्छेद 188, 191 और 193 में किया गया है जिससे कि भ्रम पैदा हो सकता है ।

71. उपर्युक्त उपबंधों से यह बिल्कुल स्पष्ट हो गया है कि 'सदन' और 'विधानसभा' के बीच कोई फर्क नहीं है । जहां कहीं भी संविधान रचयिता विधान परिषद् और विधानसभा के लिए एक जैसा उपबंध करना चाहते थे वहां उन्होंने दोनों को सदनों के रूप में निर्दिष्ट किया है और जहां कहीं संविधान रचयिता अनन्य रूप से विधानसभा के लिए कोई उपबंध बनाना चाहते थे वहां उन्होंने विधानसभा के रूप में निर्दिष्ट किया है । उपरोक्त कारणों के आधार पर हमने यह निष्कर्ष निकाला है कि संविधान के अनुच्छेद 174 के खंड (2) और विधानसभा में 'सदन' या 'किसी

सदन में' की अभिव्यक्तियां पर्यायवाची हैं और ये आन्तः परिवर्तन अभिव्यक्तियां हैं । 'सदन' अभिव्यक्ति का प्रयोग करने से प्रारूपकार की क्षमता झलकती है क्योंकि उसने भारत के संविधान के पाठ में उचित शब्द रचना का प्रयोग किया है । इसके अतिरिक्त, यथास्थिति, विधानसभा या विधान परिषद् से भिन्न अलग निकायों में 'सदन या किसी सदन' अभिव्यक्ति का प्रयोग किया जाना महत्वपूर्ण नहीं है ।

2. (क) क्या किसी विधानसभा का समय से पहले विघटन किए जाने की दशा में नई विधानसभा का गठन करने के लिए नए निर्वाचन कराने के लिए भारत के संविधान या लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम के अधीन किसी परिसीमा काल का उपबंध किया गया है या नहीं ?

72. इस संदर्भ में हमने भारत के संविधान के उपबंधों पर विचार किया है किन्तु हमें ऐसा कोई भी उपबंध नहीं मिला है जिसमें अभिव्यक्त रूप से पूर्व विधानसभा का समय से पहले विघटन किए जाने के पश्चात् नई विधानसभा का गठन करने के लिए किसी परिसीमा काल का उपबंध किया गया हो । अनुच्छेद 174(1) का हमारे द्वारा निर्वचन किए जाने के पश्चात् हम पहले ही यह अभिनिर्धारित कर चुके हैं कि इस अनुच्छेद में विघटित विधानसभा के सत्र की अंतिम बैठक की तारीख से छह मास के भीतर निर्वाचन कराए जाने के लिए किसी परिसीमा काल का उपबंध नहीं किया गया है । लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 15 में यह उपबंध किया गया है कि नई विधानसभा गठित करने के प्रयोजन के लिए, साधारण निर्वाचन वर्तमान विधानसभा की अस्तित्वावधि के अवसान पर या उसके विघटन पर किया जाएगा । इस धारा की उपधारा (2) में यह उपबंध किया गया है कि नई विधानसभा का गठन करने के लिए राज्यपाल ऐसी तारीख या तारीखों, जिसकी सिफारिश निर्वाचन आयोग द्वारा की जाए, राज्य के शासकीय राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना द्वारा राज्य में के सब निर्वाचन क्षेत्रों से यह अपेक्षा करेगा कि वे इस अधिनियम और तद्धीन बनाए गए नियमों और किए गए आदेशों के उपबंधों के अनुसार सदस्य निर्वाचित करे । इस अधिनियम की धारा 15 की उपधारा (2) के परन्तुक में यह उपबंध किया गया है कि जहां वर्तमान विधानसभा के विघटन पर होने से अन्यथा निर्वाचन होता है वहां ऐसी कोई अधिसूचना उस तारीख से, जिसको सभा की अस्तित्वावधि का अवसान अनुच्छेद 172 के खंड (1) के उपबंधों के अधीन होता हो, पूर्व के छह मास से पहले न निकाली जाएगी ।

73. उपर्युक्त उपबंधों में किसी विद्यमान विधानसभा का समय से पहले विघटन किए जाने की दशा में नई विधानसभा का गठन करने के लिए निर्वाचन कराने के लिए किसी परिसीमा काल का उपबंध नहीं किया गया है सिवाय इसके कि ऐसी विधानसभा के अवसान की सामान्य अवधि की तारीख से छह मास पहले अधिसूचना जारी करके निर्वाचन प्रक्रिया आरंभ की जा सकती है । इस प्रकार प्रश्न यह उद्भूत हुआ है कि क्या संविधान निर्माताओं ने समय से पहले विघटन की दशा में नई विधानसभा का गठन करने के लिए निर्वाचन कराने के लिए ऐसी किसी अवधि का उपबंध न करके जो लोप किया है या इसे अनदेखा किया है ऐसा उन्होंने क्या जानबूझकर किया है और संविधान में इस बाबत उन्होंने उपबंध नहीं किए हैं । इस प्रयोजन के लिए हमें भारत के संविधान को अधिनियमित करने से पहले के विधायी विकास और सांविधानिक बहसों पर अवश्य विचार करना चाहिए ।

74. जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है कि भारत सरकार अधिनियम, 1915 की धारा 63घ और 72ख(1) और भारत सरकार अधिनियम, 1919 की धारा 8(1) और 21 (1) के अधीन इण्डियन लेजिसलेचर को विघटित करने के लिए गवर्नर जनरल को सशक्त किया गया है और नियत अवधि से पहले प्रोविन्सियल लेजिसलेचर के किसी भी चेम्बर का विघटन करने के लिए गवर्नर को सशक्त किया गया है और वह ऐसे चेम्बर के आगामी सत्र के लिए उसके विघटन की तारीख से एक तारीख नियत करेगा जोकि छह मास से अधिक की नहीं होगी या सेक्रेटरी ऑफ स्टेट की मंजूरी से नौ मास से अधिक की नहीं होगी । इस पर इन कानूनों में उस परिसीमा काल का उपबंध किया गया है जिसके भीतर नए चेम्बर का गठन करने के लिए निर्वाचन कराने होते हैं । आगामी चेम्बर के लिए तारीख नियत करने की गवर्नर जनरल की जो शक्ति है वह शक्ति वैसी ही है जिसका प्रयोग ब्रिटिश परिपाटियों के अधीन ऐतिहासिक रूप से ब्रिटिश मोनार्क द्वारा किया जाता है ।

75. तथापि, भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अधीन लेजिसलेटिव काउंसिल और लेजिसलेटिव असेम्बली का गठन करने के लिए निर्वाचन कराने के लिए नियत किए गए परिसीमा काल का परित्याग कर दिया गया था और भारत सरकार अधिनियम, 1935 की अनुसूची V के पैरा 20 के अधीन गवर्नर जनरल को अनुसूची V और VI के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए नियम बनाने के लिए सशक्त किया गया था । पैरा 20 का पूर्ण रूप से संबंध निर्वाचनों से संबंधित विषयों से है और विशेष रूप से खंड (3) का संबंध निर्वाचन कराने से है । इसी प्रकार भारत सरकार अधिनियम, 1935 की अनुसूची VI में नामावली और मताधिकार की बाबत उपबंध किए गए हैं । इस प्रकार निर्वाचन कराने का कार्य कार्यपालक के सुपुर्द किया गया था और कार्यपालक को इस बात के लिए सशक्त किया गया था कि वह फेडरल लेजिसलेचर और प्रोविन्सियल लेजिसलेचर का गठन करने के लिए निर्वाचन कराने की तारीख और तारीखों को नियत करे ।

76. जब संविधान सभा के समक्ष भारतीय संविधान के अधीन निर्वाचन कराने के प्रश्न पर बहस की गई थी तब कार्यपालिका द्वारा निर्वाचन कराने के कार्य को सुपुर्द करने के संबंध में संविधान सभा के सदस्यों द्वारा चिन्ता व्यक्त की गई और सदस्यों के बीच यह सहमति हुई थी कि किसी स्वतंत्र सांविधानिक प्राधिकरण स्थापित किया जाए जो संसद और प्रत्येक राज्य के विधानमंडल के निर्वाचनों का अधीक्षण, निदेशन, नियंत्रण करे । इस संबंध में संविधान सभा/समक्ष डा. बी.आर. अम्बेडकर ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया था :–

> "किन्तु सदन ने बिना किसी असहमति के इस बात की अभिपुष्टि की है कि विधायी निकायों के निर्वाचनों की विशदता और स्वतंत्रता के हित में यह अति महत्वपूर्ण है कि ऐसे निर्वाचन स्वतंत्र हों और उनमें कार्यपालिका किसी भी प्रकार से हस्तक्षेप न करें । सदन के इस विनिश्चय के अनुसरण में प्रारूपण समिति ने मूल अधिकारों के प्रवर्ग से इस प्रश्न को हटा दिया और इसे एक अलग भाग में रखा तथा इस बाबत अनुच्छेद 289, 290 और इसके पश्चात् के अनुच्छेदों में इस बाबत उपबंध किए गए हैं । इसलिए जहां तक इस मूल प्रश्न का संबंध है कि निर्वाचन तंत्र कार्यपालक सरकार के नियंत्रण में नहीं होना चाहिए इस बाबत कोई विवाद नहीं है । संविधान सभा के इस विनिश्चय को अनुच्छेद 289 में उपबंधित किया गया है । इसके द्वारा निर्वाचनों का अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण तथा संसद और राज्यों के विधान मंडलों के सभी निर्वाचनों को कराने और निर्वाचक नामावलियों का कार्य कार्यपालिका से भिन्न एक निकाय के सुपुर्द किया गया है जिसका नाम निर्वाचन आयोग है ।"

77. उपर्युक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए अनुच्छेद 324 अधिनियमित किया गया जिससे निर्वाचन का अधीक्षण, निदेशन, नियंत्रण कराने का कार्य कार्यपालिका के हाथों में नहीं रहा अपितु इस कार्य को एक स्वशासी प्राधिकरण अर्थात् निर्वाचन आयोग को सुपुर्द कर दिया गया । ऐसा प्रतीत होता है कि निर्वाचनों से संबंधित पूरे विषय को निर्वाचन आयोग के सुपुर्द कर दिया गया और यह निष्कर्ष निकाला गया कि यदि समय से पहले विधानसभा का विघटन कर दिया जाता है तब नई विधानसभा का गठन करने के लिए नए निर्वाचन कराने के लिए किसी परिसीमा काल का उपबंध न करने का कोई परिणाम नहीं होगा । यह विनिश्चय जान-बूझकर किया गया था । तथापि, इस बाबत सावधानी बरती गई कि यह पूरा विषय निर्वाचन आयोग के हाथों में न आ जाए और इसलिए संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची-1 की प्रविष्टि 72 के साथ पठित अनुच्छेद 327 के अधीन संसद को, संसद के प्रत्येक सदन या किसी राज्य के विधानमंडल के सदन या प्रत्येक सदन के लिए निर्वाचनों से संबंधित या संसक्त सभी विषयों के संबंध में जिनके अंतर्गत निर्वाचक नामावली तैयार कराना भी है, का उपबंध करने के लिए सशक्त किया गया है । सूची-2 की प्रविष्टि 37 के साथ पठित अनुच्छेद 328 के अधीन भी राज्यों के लिए जहां तक संसद इस निमित उपबंध नहीं करती है, वहां तक किसी राज्य का विधानमंडल विधि द्वारा उस राज्य के विधानमंडल के सदन या प्रत्येक सदन के लिए निर्वाचनों से संबंधित या संसक्त सभी विषयों के संबंध में उपबंध कर सकेगा । इस प्रकार संसद को, संसद या राज्य विधानमंडल के निर्वाचनों को कराने से संबंधित विषयों की बाबत विधि बनाने के लिए सशक्त किया गया है । इससे निर्वाचन आयोग की सर्वांगीण शक्ति प्रभावित नहीं होती हैं । इस विषय को दृष्टिगत करते हुए अनुच्छेद

324(1) के अधीन निर्वाचन आयोग में निर्वाचन के अधीक्षण, निदेशन, नियंत्रण और संचालन की साधारण शक्ति यद्यपि निहित की गई है फिर भी यह शक्ति, यथास्थिति, संसद या राज्य विधानमंडल द्वारा बनाई गई विधि के अध्यधीन है और यह संविधान के उपबंधों के अध्यधीन है। 'निर्वाचन' शब्द का निर्वचन इस प्रकार किया गया है कि इसके अंतर्गत निर्वाचन कराने से संबंधित सभी काम सम्मिलित हैं। **एम.एस. गिल** बनाम **मुख्य निर्वाचन आयुक्त**[1], **ए.सी. जोस** बनाम **साइवन पिल्लई और अन्य**[2] और **कन्हैया लाल उमर** बनाम **आर.के. त्रिवेदी और अन्य**[3] वाले मामले में सतत् रूप से यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अनुच्छेद 324 से विषयों पर लागू होता है जिनके संबंध में विधान नहीं बनाया गया है और 'अधीक्षण', 'नियंत्रण', 'निदेशन' और 'सभी निर्वाचनों को कराना' शब्द बहुत व्यापक हैं। इसलिए इस बाबत कोई संदेह नहीं है कि अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण की जो शक्ति है वह शक्ति, यथास्थिति, संसद या राज्य विधानमंडल में से किसी भी द्वारा बनाई गई विधि के अध्यधीन है किन्तु अनुच्छेद 324 के अधीन निर्वाचन आयोग के सर्वांगीण शक्ति का ऐसी विधि अतिक्रमण नहीं कर सकती है।

78. हमने यह भी पाया है कि लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 में भी विगत विधानसभा का समय से पहले विघटन कर दिए जाने की दशा में नई विधानसभा का गठन करने के लिए निर्वाचन कराए जाने के लिए किसी परिसीमा काल का उपबंध नहीं किया गया है। इस संदर्भ में राष्ट्रीय राजनीतिक दलों में से एक दल के विद्वान काउंसेल द्वारा और राज्यों में से एक राज्य के विद्वान काउंसेल द्वारा यह चिन्ता व्यक्त की गई है कि न तो संविधान में और न ही लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम के अधीन ऐसे किसी परिसीमाकाल का उपबंध न किए जाने से निर्वाचन आयोग कभी निर्वाचन कराएगा ही नहीं और उस दशा में लोकतंत्र का अंत हो जाएगा। निस्संदेह यह सत्य है कि लोकतंत्र संविधान के आधारभूत ढांचे का भाग है और लोकतंत्र का आधार सामयिक, स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन है। यदि स्वतंत्र और निष्पक्ष सामयिक निर्वाचन नहीं कराए जाते हैं तो इससे लोकतंत्र समाप्त हो जाएगा और **मोहिन्दर सिंह गिल** बनाम **मुख्य निर्वाचन आयुक्त**[1] वाले मामले में इस सिद्धांत को मान्य ठहराया गया है और इस संबंध में निम्नलिखित मत व्यक्त किया गया है :–

> "स्वतंत्र तथा निर्वाचन का आधार सार्वभौम वयस्क मताधिकार है; और यह मुख्य कृत्यों के आधार, आधारों तथा संपूर्ण स्कीम में विधायी, कार्यपालिका तथा न्यायिक कार्यों के विभाजन के मुकाबले में जिसे स्वतंत्र निर्वाचन कराने के लिए निर्दिष्ट किया जाता है, विनियामक प्रक्रियाएं उसके लिए उल्लिखित है। सर्वोपरि प्राधिकारी निर्वाचन आयोग होता है, इसका प्रमुख कार्यकर्ता रिटर्निंग अधिकारी होता है, इसका विभिन्न भाग पीठासीन अधिकारी होते हैं जो मतदान केन्द्रों में जाकर कार्य करते हैं तथा निर्वाचन संबंधी व्यवस्था विस्तृत विधायी उपबंधों के अनुकूल होती है।"

79. इसी प्रकार की चिन्ता **ए.सी. जोस** बनाम **साइवन पिल्लई और अन्य**[2] वाले मामले में व्यक्त की गई थी। इस मामले में यह दलील दी गई थी कि यदि आयोग को ऐसी असीमित तथा मनमानी शक्तियों से सनद कर दिया जाता है और यदि ऐसा कदाचित हो जाता है कि आयोग में कृत्यशील व्यक्ति किसी विशिष्ट विचारधारा को मानने वाला है या उससे संलग्न है तो वह अनुचित निदेश देकर एक राजनीतिक हलचल मचा देगा अथवा कोई सांविधानिक संकट खड़ा कर देगा जिससे इससे निर्वाचन की प्रक्रिया की अखंडता तथा स्वतंत्रता तहस-नहस हो जाएगी जोकि लोकतंत्रात्मक प्रणाली के लिए महत्वपूर्ण तथा अनिवार्य है। **मोहिन्दर सिंह गिल** बनाम **मुख्य निर्वाचन आयुक्त** (ऊपर) वाले मामले में भी इसी प्रकार की आशंका व्यक्त की गई थी। उपर्युक्त चिन्ता के संबंध में इस न्यायालय द्वारा यह मत व्यक्त किया गया था कि यदि ऐसी कोई स्थिति कभी उत्पन्न होती है तो सांविधानिक उपबंधों की मर्यादा बनाए रखने के लिए न्यायपालिका उसकी एक रक्षक सिद्ध होगी और वह इस संबंध में ऐसे कदम उठाएगी जोकि देश में लोकतंत्र को बचाने के लिए पर्याप्त रक्षोपाय होंगे।

---

[1] [1978] 4 उम. नि. प. 847 = (1978) 1 एस. सी. सी. 404.

[2] [1984] 3 उम. नि. प. 1097 = (1984) 2 एस. सी. सी. 656.

[3] [1986] 2 उम. नि. प. 173 = (1986) 4 एस. सी. सी. 628.

80. तथापि, हमारा यह मत है कि लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की क्रमशः धारा 14 और 15 में आने वाले 'के अवसान पर' शब्दों के प्रयोग से यह दर्शित होता है कि निर्वाचन आयोग को विधानसभा की अवधि समाप्त हो जाने के पश्चात् या उसका विघटन कर दिए जाने के पश्चात् निर्वाचन कराने के लिए तुरन्त कदम उठाने चाहिए यद्यपि इस बाबत किसी अवधि का उपबंध नहीं किया गया है । फिर भी लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 14 और 15 में यह उपदर्शित किया गया है कि लोकसभा या विधानसभा की सामान्य अवधि के समाप्त होने से छह मास पहले अधिसूचना जारी करके निर्वाचन प्रक्रिया आरंभ की जा सकती है । अनुच्छेद 172 के खंड (1) में यह उपबंध किया गया है कि जब आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में है, तब संसद विधि द्वारा, विधानसभा की अवधि ऐसी अवधि के लिए बढ़ा सकती है, जो एक बार में एक वर्ष से अधिक नहीं होगी और उद्घोषणा के प्रवर्तन में न रह जाने के पश्चात् किसी भी दशा में उसका विस्तार छह मास की अवधि से अधिक नहीं होगा । इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 123 और 213 के अधीन, यथास्थिति, राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा उद्घोषित किसी अध्यादेश द्वारा लोकसभा या विधानसभा के अस्तित्व काल को छह मास तक बढ़ाया जा सकता है और छह मास के पश्चात् बार-बार अध्यादेश की उद्घोषणा करके ऐसी अवधि को बढ़ाए जाने को इस न्यायालय ने ठीक नहीं माना है । अनुच्छेद 109, 110 और 111 तथा राज्य विधानसभा के लिए सदृश अनुच्छेदों के अधीन धन विधेयक को लोकसभा द्वारा या विधानसभा द्वारा पारित किया जाना होता है । उपर्युक्त उपबंधों से निश्चित रूप से यह उपदर्शित होता है कि विधानसभा का समय से पहले विघटन कर दिए जाने के पश्चात् निर्वाचन आयोग को विधानसभा का गठन करने के लिए निर्वाचन करने के लिए तुरन्त कदम उठाने चाहिए और विधानसभा के समय से पहले विघटन किए जाने की तारीख से छह मास के भीतर किसी भी दशा में ऐसे कदम उठा लिए जाने चाहिए ।

2. (ख) क्या विधानसभा का गठन करने के लिए निर्वाचन कराने के प्रयोजन के लिए कार्यक्रम विरचित करने के संबंध में निर्वाचन आयोग की शक्तियों को सीमित किया गया है ?

81. जहां तक विधानसभा के निर्वाचन कराए जाने के लिए कार्यक्रम या तारीख को विरचित किए जाने का संबंध है, इस बाबत निर्वाचन आयोग का अनन्य अधिकार है जोकि संसद द्वारा विरचित किसी विधि के अधीन नहीं है । निर्वाचनों को कराए जाने की बाबत विधि विरचित करने के लिए संसद को सशक्त किया गया है किन्तु निर्वाचन आयोग का एकमात्र उत्तरदायित्व निर्वाचन कराना है । विधि के अनुसार संसद द्वारा विधि विरचित करके निर्वाचन आयोग की सर्वांगीण शक्तियों को छीना नहीं जा सकता । यदि संसद ऐसी कोई विधि बनाती है तो वह विधि अनुच्छेद 324 के विरुद्ध होगी । निर्वाचन आयोग द्वारा सामयिक, स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन कराया जाना संविधान के आधारभूत ढांचे का एक भाग है और **इन्दिरा नेहरू गांधी** बनाम **राज नारायण**[1] वाले मामले में इस बात को दोहराया गया था और इस मामले में निम्नलिखित मत व्यक्त किया गया है :–

> "केशवानन्द भारती वाले मामले में न्यायालय ने बहुमत द्वारा यह अभिनिर्धारित किया था कि अनुच्छेद 368 में अंतर्विष्ट संविधान के संशोधन की शक्ति संविधान के आधारभूत ढांचे में परिवर्तन करने की अनुज्ञा नहीं देती है । वे सब सात न्यायाधीश जिन्होंने बहुमत का निर्णय दिया था, इस बात पर भी सहमत थे कि लोकतांत्रिक व्यवस्था संविधान के आधारभूत ढांचे का भाग है । लोकतंत्र यह धारणा करता है कि सामयिक निर्वाचन होने चाहिएं जिससे कि जनता या तो पुराने प्रतिनिधियों को पुनर्निर्वाचित करने की या यदि वह ऐसा चाहे तो प्रतिनिधियों को बदलने और उनके स्थान पर अन्य प्रतिनिधियों को निर्वाचित करने की स्थिति में हो सके । लोकतंत्र यह धारणा भी करता है कि निर्वाचन स्वतंत्र और निष्पक्ष होने चाहिएं जिससे कि मतदाता अपनी पसंद के अभ्यर्थियों को मत देने की स्थिति में हो सके । वास्तव में लोकतंत्र केवल इसी व्यवस्था पर कार्य करता है कि निर्वाचन स्वतंत्र और निष्पक्ष हैं न कि छलपूर्ण हैं और यह कि निर्वाचन वास्तव में और प्ररुपिक रूप से लोकमत अभिनिश्चित करने के प्रभावी सिद्धांत हैं न कि जनसाधारण के मत के सम्मान का भ्रम उत्पन्न करने के लिए परिकल्पित औपचारिकता मात्र........।"

[1] [1976] 1 उम. नि. प. 1 = (1975) सप्ली. 1 एस. सी. सी. 1.

82. लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 14 और 15 से यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है । इन धाराओं में यह उपबंध किया गया है कि निर्वाचन आयोग द्वारा सिफारिश किए जाने के पश्चात् राष्ट्रपति या राज्यपाल निर्वाचन कराने की तारीख या तारीखों को नियत करेगा । इसलिए यह स्पष्ट है कि लोकसभा या विधानसभा के निर्वाचनों का कार्यक्रम नियत करने का निर्वाचन आयोग को अनन्य अधिकार है ।

(3) अनुच्छेद 356 को लागू किया जाना

83. ऐसा प्रतीत होता है कि निर्वाचन आयोग द्वारा अपने आदेश में संविधान के अनुच्छेद 174(1) का जिस प्रकार निर्वचन किया गया है उस निर्वचन में निर्वाचन आयोग ने विगत परिपाटियों को अपनाया है जिनके अधीन विघटित सदन की अंतिम बैठक के छह मास के भीतर नई विधानसभा का गठन करने के लिए निर्वाचन कराए जाते रहे हैं । ऐसा भी प्रतीत होता है कि निर्वाचन आयोग द्वारा अनुच्छेद 356 को लागू करने के संबंध में जो अनावश्यक सलाह दी गई है वह उसने पूर्ण सत्यनिष्ठा से दी है, यद्यपि अब हमारे द्वारा जिस प्रकार अनुच्छेद 174(1) का जो निर्वचन किया गया है उसके अनुसार हमारा यह निष्कर्ष है कि इस प्रकार इस अनुच्छेद का निर्वचन करना गलत है । तथापि, निर्वाचन आयोग ने अपनी लिखित दलील में निम्नलिखित रूप से कथन किया है :–

> "तारीख 16 अगस्त, 2002 के निर्वाचन आयोग के आदेश में अंतर्विष्ट विनिश्चय को अनुच्छेद 356 को निर्दिष्ट किए बिना लिया गया था । तथापि, इस विनिश्चय में यह उल्लेख किया गया था कि इस बात की आशंका करने की आवश्यकता नहीं है कि ऐसा करने से सांविधानिक गतिरोध उत्पन्न हो जाएगा क्योंकि ऐसी किसी परिस्थिति के हल के संबंध में अनुच्छेद 356 में उपबंध किया गया है ।"

मामले को दृष्टिगत करते हुए और अनुच्छेद 174 के निर्वचन की बाबत हमने जो मत व्यक्त किया है उस आधार पर निर्वाचन आयोग के आदेश के संदर्भ में, जिसके कारण यह निर्देश उत्पन्न हुआ है, अनुच्छेद 356 को लागू किए जाने के प्रश्न पर और आगे विचार करने की आवश्यकता नहीं है ।

ऊपर जो चर्चा की गई है उसके परिणामस्वरूप हमारा निष्कर्ष निम्नलिखित है :–

(क) अनुच्छेद 143(1) के अधीन भारत के राष्ट्रपति द्वारा किया गया निर्देश तारीख 19 अगस्त, 2002 को निर्वाचन आयोग के आदेश से उत्पन्न हुआ है और इस निदेश में जो प्रश्न उठाए गए हैं वे व्यापक महत्व के हैं और उनके भविष्य में उत्पन्न होने की संभावना है । इसके अतिरिक्त इन प्रश्नों के संबंध में इस न्यायालय का कोई विनिश्चय नहीं है तथा संविधान के अनुच्छेद 174 के निर्वचन की बाबत राष्ट्रपति के मन में संदेह उत्पन्न हुआ है इसलिए इस निर्देश का उत्तर देना आवश्यक है ।

(ख) संविधान के अनुच्छेद 174(1) का संबंध विद्यमान, अस्तित्वशील और कार्यशील विधानसभा से है न कि किसी विघटित विधानसभा से ।

(ग) अनुच्छेद 174(1) में जो यह उपबंध किया गया है कि एक सत्र की अंतिम बैठक और आगामी सत्र की प्रथम बैठक के लिए नियत तारीख के बीच छह मास का अंतर नहीं होगा यह उपबंध आज्ञापक है और इसका संबंध किसी अस्तित्वशील और विद्यमान विधानसभा के सत्रों से है तथा इस अनुच्छेद में विधानसभा का समय से पहले विघटन किए जाने के पश्चात् विधानसभा का गठन करने के लिए नए निर्वाचन कराने के लिए किसी परिसीमा काल की बाबत उपबंध नहीं किया गया है ।

(घ) 'सदन', 'किसी सदन' अभिव्यक्तियां विधानसभा या विधान परिषद् की पर्यायवाची हैं और इनके द्वारा, यथास्थिति, विधानसभा या विधान परिषद् के अलावा किसी भिन्न निकाय को निर्दिष्ट नहीं किया गया है ।

(ड.) न तो संविधान के अधीन और न ही लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम के अधीन किसी विद्यमान विधानसभा का समय से पहले विघटन कर दिए जाने के पश्चात् विधानसभा का गठन करने के लिए निर्वाचन कराने के लिए कोई परिसीमा काल विहित नहीं किया गया है । तथापि, संविधान और लोक प्रतिनिधित्व

अधिनियम की स्कीम को ध्यान में रखते हुए विधानसभा की विघटन की तारीख से विधानसभा का गठन करने के लिए छह मास की अवधि के भीतर निर्वाचन कराया जाना चाहिए ।

(च) संविधान के अधीन, विधानसभा का गठन करने के लिए निर्वाचनों के लिए तारीख या कार्यक्रम विरचित करने की शक्ति निर्वाचन आयोग के अनन्य अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत है और ऐसी कोई शक्ति संसद या राज्य विधानमंडल द्वारा बनाई गई किसी विधि के अध्यधीन नहीं है ।

(छ) इस निर्देश की सुनवाई के दौरान निर्वाचन आयोग द्वारा फाइल किए गए आरोपपत्र को ध्यान में रखते हुए अनुच्छेद 356 को लागू किए जाने की बाबत उठाए गए प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है ।

84. उपरोक्त राय के अनुसार हम निर्देशित निम्नलिखित प्रश्नों पर अपनी राय व्यक्त करना चाहते हैं :–

प्रश्न सं. (i) :

85. यह प्रश्न इस उपधारणा के आधार पर उत्पन्न हुआ है कि अनुच्छेद 174(1) विघटित विधानसभा को लागू होता है । हमने यह निष्कर्ष निकाला है कि संविधान के अनुच्छेद 174(1) में यह उपबंध किया गया है कि एक सत्र की अंतिम बैठक और आगामी सत्र की प्रथम बैठक के लिए नियत तारीख के बीच छह मास का अंतर नहीं होगा । यह उपबंध आज्ञापक प्रकृति का है और इसका संबंध किसी अस्तित्वशील और कार्यशील विधानसभा से है न कि किसी ऐसी विघटित विधानसभा से जिसका अस्तित्व समाप्त हो चुका है और जो विद्यमान नहीं रही है । इसके अतिरिक्त, अनुच्छेद 174(1) का संबंध न तो निर्वाचनों से है और न ही इसमें विधानसभा का गठन करने के लिए निर्वाचन कराने के लिए किसी अधिकतम समय सीमा का उपबंध किया गया है । संविधान के अनुच्छेद 324 के अधीन निर्वाचन आयोग के अनन्य अधिकार क्षेत्र में विधानसभा का गठन करने के लिए निर्वाचनों का अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण तथा निर्वाचक नामावलियों को तैयार कराना और निर्वाचन कराना है । इस मामले को दृष्टिगत करते हुए अनुच्छेद 174(1) और अनुच्छेद 324 अलग-अलग क्षेत्रों में प्रवर्तित होते हैं और न तो अनुच्छेद 174(1) अनुच्छेद 324 के अध्यधीन है और न ही अनुच्छेद 324 संविधान के अनुच्छेद 174(1) के अध्यधीन है ।

प्रश्न सं. (ii) :

86. यह प्रश्न भी इस उपधारणा के आधार पर उत्पन्न हुआ है कि अनुच्छेद 174(1) किसी विघटित सदन को भी लागू होता है । हमने पहले ही अनुच्छेद 174(1) का निर्वचन किए जाने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया है कि उक्त अनुच्छेद किसी विघटित विधानसभा को लागू नहीं होता है । परिणामतः निर्वाचन आयोग द्वारा किसी विधानसभा के निर्वाचनों के लिए कार्यक्रम तैयार करने के कारण अनुच्छेद 174(1) के आदेश का उल्लंघन नहीं हुआ है । निर्वाचन आयोग ने अपनी लिखित दलील में निम्नलिखित रूप से कथन किया है :–

> "तारीख 16 अगस्त, 2002 को निर्वाचन आयोग के आदेश में जो विनिश्चय अंतर्विष्ट है उस विनिश्चय को अनुच्छेद 356 को निर्दिष्ट किए बिना लिया गया था । तथापि, यह उल्लेख किया जा सकता है कि इस संबंध में आशंकित होने की आवश्यकता नहीं है कि इस वजह से सांविधानिक गतिरोध उत्पन्न हो जाएगा क्योंकि ऐसी किसी परिस्थिति का हल करने के लिए अनुच्छेद 356 में उपबंध किए गए हैं ।"

मामले को इस प्रकार दृष्टिगत करते हुए अनुच्छेद 174 के उपबंधों का उल्लंघन करके अनुच्छेद 356 को लागू करने से संबंधित प्रश्न में कोई सार नहीं रहा है और इसलिए अनुच्छेद 356 को लागू करने के संबंध में विचार करने की आवश्यकता नहीं है ।

प्रश्न सं. (iii) :

87. यह प्रश्न भी इस उपधारणा के आधार पर उत्पन्न हुआ है कि किसी विघटित विधानसभा को भी अनुच्छेद 174(1) के उपबंध लागू होते हैं । प्रश्न सं. (i) के संबंध में हमने जो उत्तर दिया है उसको ध्यान में रखते हुए हमने

पहले ही यह अभिनिर्धारित किया है कि अनुच्छेद 174(1) न तो समय से पहले विघटित विधानसभा को लागू होता है और न ही इसमें निर्वाचनों के संबंध में उपबंध किए गए हैं और इसलिए संविधान के अनुच्छेद 174(1) के आदेश को कार्यान्वित करने के लिए निर्वाचन आयोग से संबंधित प्रश्न उत्पन्न ही नहीं हुआ है । अनुच्छेद 324 के अधीन निर्वाचन आयोग का यह कर्तव्य और जिम्मेदारी है कि वह शीघ्रता से स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन कराए । निर्वाचन आयोग द्वारा समय पर निर्वाचन कराने के संबंध में सभी प्रयास किए जाने चाहिए । साधारणतया विधि-व्यवस्था और लोक अव्यवस्था के कारण निर्वाचनों को मुल्तवी नहीं किया जाना चाहिए और सभी संबंधित व्यक्तियों का यह कर्तव्य और उत्तरदायित्व है कि वे स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन कराने के लिए निर्वाचन आयोग की सहायता और सहयोग करें ।

88. तदनुसार निदेश का उत्तर दिया जाता है ।

न्या. बालाकृष्णन् –

89. मुझे मेरे विद्वान भ्राता न्यायमूर्ति बी.एन. खरे और न्यायमूर्ति अरिजीत पसायत के प्रारूप में जो राय व्यक्त की गई है कि उसे पढ़ने का फायदा मिला है और मैं पूर्ण रूप से अनुच्छेद 174 के निर्वचन की बाबत उनके द्वारा जो राय अभिव्यक्त की गई है उससे सहमत हूं तथा भारत के राष्ट्रपति द्वारा किए गए निर्देश के संबंध में उन्होंने जो पारिणामिक उत्तर दिए हैं उनसे सहमत हूं और मैं इस संबंध में निम्नलिखित राय व्यक्त करना चाहता हूं ।

90. गुजरात की विधानसभा का विघटन तारीख 19 जुलाई, 2002 को गुजरात के राज्यपाल द्वारा संविधान के अनुच्छेद 174(2)(ख) के अधीन प्रदत्त की गई शक्तियों का प्रयोग करते हुए किया गया था । विधानसभा की पूरी समयावधि तारीख 18 मार्च, 2002 को समाप्त होनी थी । विधानसभा का विघटन करने के पश्चात् गुजरात राज्य के शासक दल ने निर्वाचन आयोग से शीघ्रता से नए साधारण निर्वाचन कराने का अनुरोध किया था जिससे कि नई विधानसभा तारीख 6 अक्तूबर, 2002 से पहले अपना सत्र बुला सके । गुजरात राज्य के शासक दल ने यह मांग इस आधार वाक्य के आधार पर की थी कि संविधान के अनुच्छेद 174(1) के अधीन विघटित विधानसभा के अंतिम सत्र के बीच और नई गठित विधानसभा के आगामी सत्र के अधिवेशन की प्रथम बैठक के बीच छह मास से अधिक का अंतर नहीं होना चाहिए । कुछ अन्य राजनीतिक दलों, समाजसेवी नागरिकों और संगठनों ने निर्वाचन आयोग से यह अनुरोध किया था कि वह गुजरात राज्य विधानसभा का साधारण निर्वाचन न कराए अपितु उस समय तक इंतजार करे जब तक जो व्यक्ति साम्प्रदायिक दंगों और हिंसा से प्रभावित हुए हैं वे विभिन्न राहत शिविरों में रुके हुए हैं और जब तक वे अपने घरों में वापस नहीं आ जाते हैं तब तक निर्वाचन न कराए जाएं ।

91. फरवरी, 2002 के अंतिम सप्ताह में गुजरात में गोधरा के रेलवे स्टेशन पर एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना घटित हुई थी जिसमें एक रेल के डिब्बे को आग लगा दी गई थी और उस रेल के डिब्बे में जो कई व्यक्ति थे उनकी जलकर मृत्यु हो गई थी । इस घटना के पश्चात् गुजरात के विभिन्न भागों में साम्प्रदायिक दंगे भड़क उठे थे और गुजरात के कई शहरों में कर्फ्यू लगाना पड़ा था । ऐसे दंगों के शिकार कई व्यक्तियों को राहत शिविरों में रखा गया था । निर्वाचन आयोग, जिससे निर्वाचन कराने का अनुरोध किया गया था, उसके अधिकारी गुजरात गए थे और तारीख 16 अगस्त, 2002 को निर्वाचन आयोग द्वारा आदेश पारित किया गया था जिसमें निम्नलिखित मत व्यक्त किया गया था :–

(1) आयोग की यह राय है कि संविधान का अनुच्छेद 174(1) विघटित विधानसभाओं की बाबत भी लागू होता है और निर्वाचन आयोग ने अपने आदेश में यह कथन किया है कि आयोग का विगत में यह मत रहा है कि संविधान के अनुच्छेद 174(1) में उल्लिखित छह मास की अवधि न केवल अस्तित्वशील विधानसभा को लागू होती है अपितु यह अवधि किसी विघटित विधानसभा को भी लागू होती है और नई विधानसभा का गठन करने के लिए निर्वाचन सदैव छह मास की समय अवधि के भीतर कराए जाने चाहिए जिससे कि नई विधानसभा विघटित विधानसभा के अंतिम सत्र की अंतिम बैठक से छह मास की अवधि के भीतर अपना अधिवेशन कर सके;

(2) आयोग की यह भी राय है कि संविधान के अनुच्छेद 174 का किसी अन्य रीति से निर्वचन करने के कारण विधानसभा के दोनों सदनों के बीच काफी अंतराल हो जाएगा और इस वजह से लोकतंत्र का दुरुपयोग होगा, संविधान में या किसी विधि में कोई ऐसी अवधि विहित नहीं की गई है जिसके दौरान पूर्व सदन का विघटन किए जाने के पश्चात् नई विधानसभा का निर्वाचन कराया जाए ।

(3) आयोग ने आगे यह भी मत व्यक्त किया है कि संविधान के अनुच्छेद 174(1) को अलग से नहीं पढ़ा जा सकता है और इस अनुच्छेद को संविधान के अन्य सुसंगत उपबंधों के साथ विशेष रूप से संविधान के अनुच्छेद 324 के साथ पढ़ा जाना चाहिए और अनुच्छेद 324 किसी अन्य अनुच्छेद के उपबंधों, जिसके अंतर्गत अनुच्छेद 174(1) भी है, के अध्यधीन नहीं है और इस अनुच्छेद के अधीन निर्वाचन आयोग को संसद और राज्य विधानसभा के निर्वाचनों का अन्य बातों के साथ-साथ, अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण तथा निर्वाचक नामावलियां तैयार करने की शक्ति निहित की गई है । आयोग ने आगे यह मत व्यक्त किया है कि सार्वभौम वयस्क मताधिकार के आधार पर स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन कराना संविधान का आधारभूत स्वरूप है और गुजरात में विद्यमान परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए ऐसा नहीं किया जा सकता । आयोग का यह भी मत है कि साम्प्रदायिक दंगों और हिंसा के कारण बड़ी संख्या में मतदाता इधर-उधर चले गए हैं और वे अपने घरों को नहीं लौटे हैं तथा वे अपना मत डालने के लिए मतदान केन्द्रों में जाने में असमर्थ हैं और निर्वाचन नामावलियों का भी पुनरीक्षण किया जाना है ।

92. इसलिए निर्वाचन आयोग इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि वह विधानसभा के विघटन के तुरन्त पश्चात् स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन कराने की स्थिति में नहीं है और निर्वाचक नामावलियों का पुनरीक्षण कराने के पश्चात् ही निर्वाचन कराए जा सकते हैं और आयोग नवम्बर/दिसम्बर, 2002 मास में विधानसभा के साधारण निर्वाचन कराने की स्थिति में होगा ।

93. आयोग का यह भी मत है कि जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 174(1) द्वारा यथाअनुध्यात है कि कम-से-कम प्रत्येक छह मास में विधानसभा का अधिवेशन आहूत किया जाएगा और यह बात विघटित विधानसभा को भी लागू होती है और यदि ऐसा कराना संभव नहीं है तो उसका यह अर्थ है कि राज्य की सरकार संविधान के अनुच्छेद 356(1) के अर्थान्तर्गत संविधान के उपबंधों के अनुसार कार्य नहीं कर सकती है और राष्ट्रपति को इस बाबत हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए और आपात की घोषणा करनी चाहिए ।

94. निर्वाचन आयोग की रिपोर्ट मिलने के पश्चात् भारत के संविधान के अनुच्छेद 143(1) के अधीन राष्ट्रपतीय निर्देश किया गया था और निर्देश का आदेश इस उपधारणा के आधार पर किया गया था कि अनुच्छेद 174(1) के अधीन संविधान में यह आदेश किया गया है कि पूर्व सत्र की अंतिम बैठक और आगामी सत्र की प्रथम बैठक के लिए नियत की गई तारीख के बीच छह मास का अंतर नहीं होगा तथा निर्वाचन आयोग की निरंतर रूप से यह राय रही है कि सामान्यतः विधानसभा का अधिवेशन प्रत्येक छह मास में होना चाहिए और संविधान के अनुच्छेद 174(1) द्वारा भी यह अनुध्यात किया गया है और यहां तक कि विघटित विधानसभा की दशा में भी ऐसा ही होना चाहिए तथा भारत निर्वाचन आयोग के तारीख 16 अगस्त, 2002 के आदेश में गुजरात राज्य की नई विधानसभा का गठन करने के लिए साधारण निर्वाचन कराने के लिए किसी तारीख की सिफारिश नहीं की गई है । भारत के संविधान के अनुच्छेद 174(1) के अधीन यथाउपबंधित छह मास की नियत अवधि के भीतर अधिवेशन के लिए नई विधानसभा अस्तित्व में नहीं आ सकती है । निर्वाचन आयोग ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया था और निर्देश में भी इसका उल्लेख किया गया है :–

> "निर्वाचन आयोग ने यह अभिनिर्धारित किया है कि विद्यमान स्थिति में अनुच्छेद 174(1) के उपबंधों का अनुपालन नहीं किया जा सकता है । इसका यह अर्थ होगा कि राज्य की सरकार संविधान के अनुच्छेद 356(1) के अर्थान्तर्गत संविधान के उपबंधों अनुसार कार्य नहीं कर सकती है और राष्ट्रपति को इस संबंध में हस्तक्षेप करना होगा ;

भारत निर्वाचन आयोग के उक्त आदेश की सांविधानिक विधिमान्यता की बाबत संदेह उत्पन्न हुए हैं और इसका यह परिणाम होगा कि संविधान के अनुच्छेद 174(1) के अधीन जो आज्ञापक अपेक्षा परिकल्पित की गई है कि राज्य विधानमंडल की दो बैठकों के बीच छह मास का अंतर नहीं होगा । निर्वाचन आयोग के आदेश से इसका अननुपालन होगा ;

इसमें ऊपर जो कथन किया गया है उसको ध्यान में रखते हुए मुझे यह प्रतीत होता है कि इसमें इसके पश्चात् अधिकथित विधि के जो प्रश्न उत्पन्न हुए हैं वे ऐसी प्रकृति और व्यापक महत्व के हैं जिनके संबंध में भारत के उच्चतम न्यायालय की राय अभिप्राप्त करना समीचीन है ।"

भारत के उच्चतम न्यायालय को निम्नलिखित तीन प्रश्न विचार के लिए निर्दिष्ट किए गए थे :–

(i) क्या विधानसभा के निर्वाचनों के कार्यक्रम के लिए अनुच्छेद 324 के अधीन भारत निर्वाचन आयोग के विनिश्चय के अध्यधीन अनुच्छेद 174 है या नहीं ?

(ii) क्या निर्वाचन आयोग इस आधार वाक्य के आधार पर किसी विधानसभा के निर्वाचनों के कार्यक्रम को अनुच्छेद 174 के आदेश का उल्लंघन करके विरचित कर सकता है और क्या इस प्रकार के उल्लंघन का प्रतिसमाधान राष्ट्रपति द्वारा अनुच्छेद 356 का प्रयोग करके किया जा सकता है या नहीं ?

(iii) क्या निर्वाचन आयोग स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन सुनिश्चित करने के लिए संघ और राज्य के सभी अपेक्षित स्रोतों को लेकर संविधान के अनुच्छेद 174 के आदेश के अनुसार निर्वाचन कराने के कर्तव्याधीन है या नहीं ?

95. निर्देश के प्राप्त होने के पश्चात् सभी राज्यों और सभी मान्यताप्राप्त राष्ट्रीय राजनीतिक दलों को सूचनाएं जारी की गई थीं । भारत संघ की ओर से महा-सालीसीटर श्री हरीश एन. साल्वे हाजिर हुऐ और उन्होंने निम्नलिखित दलीलें दी थीं । भारत संघ की ओर से यह दलील दी गई है कि अनुच्छेद 174 विघटित विधानसभाओं को भी लागू होता है और चूंकि नए निर्वाचन कराने के लिए कोई समय-सीमा नहीं है इसलिए इस आधार पर विधानसभा के विघटन के पश्चात् भी मंत्रिपरिषद् निरंतर रूप से कार्य करती रहेगी जिसका परिणाम यह होगा कि सांविधानिक लोकतंत्र ध्वस्त हो जाएगा । यह दलील दी गई है कि अनुच्छेद 174 या अनुच्छेद 85 या अनुच्छेद 75 या अनुच्छेद 164 का अनुच्छेद 324 के साथ कोई विवाद नहीं है और यह उपबंध अलग-अलग क्षेत्रों में लागू होते हैं तथा निर्वाचनों का अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण की शक्ति निर्वाचन आयोग को विहित की गई है और वह इस शक्ति का प्रयोग इस रीति में करेगा जोकि प्रतिनिधि सरकार की सांविधानिक स्कीम के संगत हो । यह भी अनुरोध किया गया है कि निर्वाचन आयोग को स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन सुनिश्चित करने के लिए संघ और राज्य के अपेक्षित सभी संसाधनों का प्रयोग करना चाहिए । आगे यह भी दलील दी गई है कि अनुच्छेद 356 के अधीन जो शक्ति प्रदत्त की गई है वह सांविधानिक मताधिकार का अभिनिश्चय करने के लिए बिल्कुल असंगत है और यह शक्ति बिल्कुल विवेकाधिकार पर निर्भर करती है और सांविधानिक मशीनरी के भंग हो जाने पर ही इस शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए । कार्यपालिक सरकार को निर्वाचन कराने के लिए मजबूर करने का कोई विधिक अधिकार नहीं है और यहां तक कि संसद भी संकल्प पारित करके निर्वाचन आयोग को निर्वाचनों के लिए कोई विशिष्ट कार्यक्रम नियत करने के लिए वैध रूप से मजबूर नहीं कर सकती है । इसी प्रकार निर्वाचन आयोग भी किसी आधारवाक्य के आधार पर राष्ट्रपति शासन अधिरोपित करने के संबंध में सिफारिश नहीं कर सकता है क्योंकि राष्ट्रपति शासन को अधिरोपित करने के लिए संसद द्वारा उसका अनुसमर्थन प्राप्त करने के लिए कार्यपालिक कार्रवाई अपेक्षित होगी ।

96. भारतीय जनता पार्टी की ओर से हाजिर होने वाले ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री अरुण जेटली ने यह दलील दी है कि निर्वाचन आयोग की जो यह राय है कि अनुच्छेद 174 संविधान के अनुच्छेद 324 के अध्यधीन है, यह राय बिल्कुल त्रुटिपूर्ण है और सांविधानिक आदेश के प्रतिकूल है । उन्होंने आगे यह भी दलील दी है कि अनुच्छेद 324 के अधीन निर्वाचन आयोग अनियंत्रित शक्तियों का प्रयोग नहीं कर सकता है और आयोग को या तो संविधान के अधीन

या अनुच्छेद 327 और 328 की विधि के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग करना चाहिए । यह भी दलील दी गई है कि यदि विधानसभा का विघटन कर दिया जाता है तब भी सदन अस्तित्व में बना रहता है इसलिए अनुच्छेद 174 विघटित विधानसभाओं को भी लागू होता है । विभिन्न देशों में, जिसके अंतर्गत ब्रिटेन भी है, जिन संसदीय परिपाटियों का निर्वहन किया जाता है उनकी बाबत भी निर्देश किया गया था ।

97. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की ओर से हाजिर होने वाले ज्येष्ठ काउंसेल श्री कपिल सिब्बल ने यह दलील दी है कि अनुच्छेद 174 विघटित विधानसभा को लागू नहीं होता है । तथापि, उन्होंने यह निवेदन किया है कि किसी विधानसभा का विघटन हो जाने के पश्चात् निर्वाचन आयोग का यह कर्तव्य है कि वह तुरन्त निर्वाचन कराए और नई विधानसभा का प्रथम अधिवेशन शीघ्रता से बुलाने के संबंध में आवश्यक कदम उठाए । तथापि, यह दलील दी गई है कि निर्वाचन आयोग सर्वोपरि प्राधिकारण है और कब स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन कराए जाने हैं इसका विनिश्चय वही कर सकता है । संविधान के अनुच्छेद 324 के अधीन निर्वाचन आयोग को कब निर्वाचन कराए जाने हैं इस प्रश्न का विनिश्चय करने के लिए व्यापक शक्तियां दी गई हैं और यदि निर्वाचन आयोग असंगत कारणों की वजह ससंवैधानिक आदेश का पालन नहीं करता है तो उसके ऐसे विनिश्चय को न्यायिक पुनर्विलोकन के अधीन चुनौती दी जा सकती है । काउंसेल के अनुसार यदि इन सांविधानिक उपबंधों का निर्वचन किसी और रीति से किया जाता है तो उसकी वजह से एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाएगी जिसके अधीन निर्वाचन आयोग तब भी निर्वाचन कराने के लिए मजबूर होगा जबकि उसके लिए स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन कराना संभव न हो और ऐसा किया जाना किसी लोकतंत्रात्मक सरकार की सांविधानिक भावना के विरुद्ध होगा । यह दलील दी गई है कि चूंकि यह निर्देश सांविधानिक उपबंधों की गलत धारणा पर आधारित है इसलिए इस न्यायालय को इसका उत्तर देने की आवश्यकता नहीं है ।

98. बिहार राज्य की ओर से हाजिर होने वाले ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री राम जेठमलानी ने यह दलील दी है कि अनुच्छेद 174 ऐसी किसी विधानसभा को लागू होता है जो अस्तित्वशील है न कि किसी ऐसी विधानसभा को जिसका समय से पहले विघटन कर दिया गया है या उसकी समयावधि समाप्त हो जाने के पश्चात् उसका विघटन कर दिया गया है । किसी लोकतंत्रात्मक और गणतंत्रात्मक संविधान का आधारभूत स्वरूप स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन है और अनुच्छेद 174, अनुच्छेद 324 के अधीन है । ज्येष्ठ अधिवक्ता द्वारा आगे यह और दलील दी गई है कि अनुच्छेद 356 के अधीन अनुच्छेद 174 के प्रवर्तन को निलम्बित करने की शक्ति नहीं है । यह दलील दी गई है कि अनुच्छेद 174 द्वारा राज्य के राज्यपाल पर एक आदेश अधिरोपित किया गया है और निर्वाचन आयोग से इसका संबंध नहीं है ।

99. भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) की ओर से हाजिर होने वाले ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री राजीव धवन ने भी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की ओर से हाजिर होने वाले काउंसेल द्वारा दी गई दलीलों का समर्थन किया है और यह दलील दी है कि अनुच्छेद 174 विघटित विधानसभा को लागू नहीं होता है । अन्य राजनीतिक दलों और विभिन्न राज्यों की ओर से हाजिर होने वाले काउंसेल द्वारा भी इसी प्रकार की दलीलें दी गई हैं ।

100. निर्वाचन आयोग की ओर से हाजिर होने वाले ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री के. के. वेणुगोपाल ने यह दलील दी है कि अनुच्छेद 174 विघटित विधानसभा को लागू नहीं होता है । यह दलील दी गई है कि स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन कराया जाना संविधान का आधारभूत स्वरूप है और निर्वाचन के अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण की शक्ति निर्वाचन आयोग में निहित की गई है । आगे यह और दलील दी गई थी कि चूंकि यह निर्देश गलत आधार वाक्य पर आधारित है इसलिए इस न्यायालय को इसका उत्तर देने की आवश्यकता नहीं है । यह भी दलील दी गई थी कि निर्वाचन आयोग बहुत प्रतिकूल परिस्थितियों के अधीन भी शीघ्रतापूर्वक निर्वाचन कराने का सर्वोत्तम प्रयास करता रहा है और विगत 50 वर्षों में निर्वाचन आयोग ने एक निष्पक्ष और स्वतंत्र निकाय के रूप में अच्छी ख्याति अर्जित की है और विभिन्न राज्य विधानमंडलों और लोकसभा के निर्वाचन कराए हैं ।

101. हम अन्य ज्येष्ठ वकीलों, मैसर्स के. परासरन, पी.पी. राव, सर्वश्री मिलन बनर्जी, एम.सी. भंडारे, अश्विनी कुमार, पी.एन. पुरी, ए. शरण, देवेन्द्र एन. द्विवेदी, ए.एम. सिंघवी, गोपाल सुब्रामण्यम और विजय बहुगुणा के बहुत आभारी हैं जिन्होंने इस मामले में अंतर्ग्रस्त जटिल विभिन्न विधिक प्रश्नों के संबंध में बहुत स्पष्ट दलीलें दी हैं ।

102. प्रथम और सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न विचार के लिए यह उत्पन्न हुआ है कि क्या अनुच्छेद 174 किसी विघटित विधानसभा को लागू होता है या नहीं । अगला प्रश्न विचार के लिए यह उत्पन्न हुआ है कि संविधान के अनुच्छेद 147 और अनुच्छेद 324 की परस्पर क्रिया क्या है । आनुषंगिक रूप से यह प्रश्न भी उत्पन्न हो सकता है कि या निर्वाचन आयोग कोई भी बहाना बनाकर अनिश्चितकाल के लिए निर्वाचन मुल्तवी कर सकता है और क्या वह कोई ऐसी स्थिति सृजित कर सकता है जिसकी वजह से लोकतांत्रिक सरकार भंग हो जाए । संविधान के अनुच्छेद 174 निम्नलिखित है :–

"174. राज्य के विधान-मंडल के सत्र, सत्रावसान और विघटन –

(1) राज्यपाल, समय-समय पर, राज्य के विधान-मंडल के सदन या प्रत्येक सदन को ऐसे समय और स्थान पर, जो वह ठीक समझे, अधिवेशन के लिए आहूत करेगा, किंतु उसके एक सत्र की अंतिम बैठक और आगामी सत्र की प्रथम बैठक के लिए नियत तारीख के बीच छह मास का अंतर नहीं होगा ।

(2) राज्यपाल, समय-समय पर –

(क) सदन का या किसी सदन का सत्रावसान कर सकेगा ;

(ख) विधानसभा का विघटन कर सकेगा ।"

संविधान का अनुच्छेद 324 निम्नलिखित है :–

"324. निर्वाचनों के अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण का निर्वाचन आयोग में निहित होना –

(1) इस संविधान के अधीन संसद और प्रत्येक राज्य के विधानमंडल के लिए कराए जाने वाले सभी निर्वाचनों के लिए तथा राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के पदों के लिए निर्वाचनों के लिए निर्वाचक-नामावली तैयार कराने का और उन सभी निर्वाचनों के संचालन का अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण, एक आयोग में निहित होगा (जिसे इस संविधान में निर्वाचन आयोग कहा गया है) ।

(2) .....

(3) .....

(4) .....

(5) .....

(6) ....."

103. संविधान (प्रथम संशोधन) अधिनियम, 1951 की धारा 8 द्वारा संविधान के अनुच्छेद 174 का संशोधन किया गया था । संशोधित अनुच्छेद द्वारा राज्यपाल से यह अपेक्षा की गई है कि वह राज्य के विधान-मंडल के सदनों या प्रत्येक सदन को आहूत करेगा और इस अनुच्छेद में यह आदेश किया गया है कि एक सत्र की अंतिम बैठक और आगामी सत्र की प्रथम बैठक के लिए नियत की गई तारीख के बीच छह मास का अंतर नहीं होगा । अनुच्छेद 174(1) का एकमात्र उद्देश्य जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से कार्यपालिका की जवाबदेही सुनिश्चित करना है । अनुच्छेद 164(2) में यह उपबंध किया गया है कि मंत्रिपरिषद् राज्य की विधानसभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगी । लोकतांत्रिक सरकार देश की जनता के प्रति उत्तरदायी होती है और राज्य की जनता का प्रतिनिधित्व विधानसभा में उसके सदस्य करते हैं तथा मंत्रिपरिषद् सामूहिक रूप से विधानसभा के प्रति उत्तरदायी

होगी । इसलिए विधानसभा के अधिवेशनों की क्षिप्रता (बारंबारता) आवश्यक है अन्यथा कार्यपालिक सरकार के कार्रवाइयों पर कोई नियंत्रण नहीं रहेगा । महासालीसीटर ने यह दलील दी है कि अनुच्छेद 174 विघटित विधानसभा को भी लागू होता है क्योंकि सदन का विघटन नहीं होता है और यह उल्लेख किया गया है कि जब ब्रिटिश संसद का विघटन किया जाता है तो इसके साथ-साथ संसद के आगामी सत्र को आहूत करने की सूचना भी जारी की जाती है । इस आधार पर यह दलील दी गई है कि अनुच्छेद 174 किसी विघटित विधानसभा को भी लागू होता है । हमें इस दलील में कोई बल प्रतीत नहीं होता है । अनुच्छेद 174 में जिन शब्दों का प्रयोग किया गया है उनके अर्थ से यह स्पष्ट है कि अनुच्छेद 174 विघटित विधानसभा को लागू नहीं होता है । अनुच्छेद 174 में "एक सत्र की अंतिम बैठक और आगामी सत्र की प्रथम बैठक के लिए नियत तारीख के बीच छह मास का अंतर नहीं होगा" आने वाले शब्दों से स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित होता है कि दो सत्रों के बीच का अंतराल छह मास से अधिक का नहीं होगा और यह केवल किसी अस्तित्वशील विधानसभा को ही लागू होता है । जब विधानसभा विघटित कर दी जाती है तब अनुच्छेद 174 लागू नहीं होता है ।

104. यद्यपि, निर्वाचन आयोग ने अपनी रिपोर्ट में यह कथन किया है कि आयोग का निरंतर यह मत रहा है कि जब एक बार विधान सभा विघटित कर दी जाती है तब आगामी विधानसभा की प्रथम बैठक को बुलाने के लिए विघटित विधानसभा की अंतिम बैठक के छह मास के भीतर सभी संभव प्रयास किए जाने चाहिएं । यह एक बहुत स्वस्थ परम्परा है और संविधान को अपनाए जाने के बाद से इसका पालन किया जा रहा है और हमें निर्वाचन आयोग की इस कार्रवाई की सराहना करनी चाहिए कि उसने निर्वाचन कराने का कार्यक्रम सदैव इस तरीके से बनाया है जिससे कि विघटित विधानसभा की अंतिम बैठक की छह मास की अवधि के भीतर आगामी विधानसभा के प्रथम सत्र का अधिवेशन हो सके । किन्तु, अनुच्छेद 174 को इस प्रकार निर्वचन करने का कोई कारण नहीं है कि यह अनुच्छेद किसी विघटित विधानसभा को भी लागू होगा । अनुच्छेद 174 के अधीन यथाउपबंधित बैठकों की क्षिप्रता(बारम्बारता) केवल ऐसी विधानसभा को लागू होती है जोकि उस समय अस्तित्व में हो ।

105. इसलिए यह प्रश्न उत्पन्न हो सकता है कि यदि अनुच्छेद 174 किसी विघटित विधानसभा को लागू नहीं होता है तो क्या निर्वाचन आयोग अनिश्चितकाल के लिए निर्वाचन मुल्तवी कर सकता है जिससे कि लोकतंत्रात्मक सरकार का प्रयोजन ही विफल हो जाए ? क्या संविधान में या लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 में निर्वाचन कराने के लिए कोई समय-सीमा विहित करने का आदेश किया गया है या नहीं ? स्पष्ट रूप से न तो संविधान में और न ही लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के अधीन विधानसभा की अवधि समाप्त हो जाने के पश्चात् या समय से पहले विधानसभा का विघटन किए जाने के पश्चात् या अन्यथा निर्वाचन कराए जाने के लिए कोई समय-सीमा विहित नहीं की गई है । लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 15(2) के परन्तुक में यह कथन किया गया है कि जहां वर्तमान विधानसभा के विघटन पर होने से अन्यथा साधारण निर्वाचन होता है वहां ऐसी कोई अधिसूचना उस तारीख से जब विधानसभा की अस्तित्वावधि का अवसान अनुच्छेद 83 के खंड (2) के उपबंधों के अधीन होता, पूर्व के छह मास से पहले न निकाली जाएगी । यदि विधानसभा का विघटन कर दिया गया है तो निर्वाचन आयोग शीघ्रतापूर्वक नई विधानसभा का गठन करने के लिए निर्वाचन कराने के संबंध में आवश्यक कदम उठाएगा । लोकतंत्रात्मक सरकार केवल तभी अस्तित्व में रह सकती है जबकि देश का शासन निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा किया जाए निर्वाचन आयोग द्वारा यदि इस संबंध में कोई विलम्ब किया जाता है तो यह बहुत महत्वपूर्ण है और निर्वाचन आयोग का यह सांविधानिक कर्तव्य है कि वह तुरन्त विधानसभा के विघटन के पश्चात् निर्वाचन कराने के संबंध में कदम उठाए। संविधान के अनुच्छेद 324 के अधीन निर्वाचन आयोग को व्यापक शक्तियां दी गई हैं और समय-समय पर कई बार इस न्यायालय ने निर्वाचन आयोग को निहित की गई शक्तियों और कर्तव्यों की सीमा का उल्लेख किया है । विभिन्न राजनीतिक दलों की ओर से हाजिर होने वाले विभिन्न काउंसेलों द्वारा यह दलील दी गई है कि यदि निर्वाचन आयोग किसी भी बहाने से अनिश्चितकाल के लिए निर्वाचन मुल्तवी कर देता है तब क्या स्थिति होगी । इस प्रकार यह प्रश्न उद्भूत हुआ था कि 'रक्षकों की रक्षा कौन करे' ।

106. निर्वाचन आयोग को निर्वाचन कार्यक्रम का विनिश्चय करने की शक्ति निहित की गई है । वह केवल सांविधानिक उपबंधों के अनुसार कार्य कर सकता है । नई विधानसभा का निर्वाचन करने के लिए निर्वाचन प्रक्रिया ऐसी विधानसभा के विघटन के तुरन्त पश्चात् आरंभ हो जाना चाहिए । कई मामलों में ऐसा हो सकता है कि जहां निर्वाचक नामावली अद्यतन न हो और ऐसी दशा में निर्वाचन आयोग को निर्वाचक नामावली अद्यतन करने की शक्ति है और निर्वाचक नामावली को इस प्रकार अद्यतन करने के लिए उसके द्वारा जो समय लिया जाएगा वह समय युक्तिसंगत होना चाहिए । सामान्य रूप से निर्वाचन आयोग को अधिसूचना जारी करने, नामांकन करने और ऐसी अन्य प्रक्रियाओं के लिए भी समय की आवश्यकता है जिससे कि वह उचित रूप से निर्वाचन करा सके । कई बार ऐसी परिस्थितियां हो सकती हैं या निर्वाचन आयोग कुछ प्राकृतिक विपदाओं के कारण स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन कराने की स्थिति में न हो । ऐसी परिस्थिति के अधीन भी निर्वाचन आयोग को अपने अधीन सभी संसाधनों का उपयोग करके शीघ्रता से निर्वाचन कराने का प्रयास करना चाहिए । सरकार के विभिन्न विभागों, जिसके अंतर्गत सेना और अर्द्ध-सैनिक बल भी हैं, की सहायता लेकर अपनी सभी कार्रवाइयों को समन्वित करने के संबंध में निर्वाचन आयोग को पर्याप्त शक्तियां प्रदत्त की गई हैं । जब मुख्यमंत्री सलाह पर राज्यपाल द्वारा विधानसभा का विघटन कर दिया जाता है तब स्वाभाविक रूप से मुख्यमंत्री या उसके राजनीतिक दल को निर्वाचक मंडल से नया जनादेश प्राप्त करना होता है । निर्वाचन आयोग का यह कर्तव्य है कि वह नए सिरे से निर्वाचन कराए जिससे कि शीघ्रतापूर्वक लोकतांत्रिक रूप से निर्वाचित सरकार बन सके और यदि निर्वाचन आयोग का आशय इस स्वीकृत उद्देश्य को विफल करने का है जिसकी वजह से कोई निर्वाचित सरकार शासन में नहीं आ सकती है तो निर्वाचन आयोग के ऐसे विनिश्चय को निश्चित रूप से इस न्यायालय के समक्ष तब चुनौती दी जा सकती है यदि निर्वाचन आयोग का ऐसा विनिश्चय अन्यायोचित, अयुक्तियुक्त या असंगत कारणों के आधार पर आधारित है और यदि निर्वाचन आयोग का विनिश्चय इन आधारों के कारण दोषपूर्ण हो गया है तब न्यायालय निर्वाचन कराने के लिए उपयुक्त निदेश दे सकता है ।

107. इस न्यायालय को निर्दिष्ट किए गए प्रश्नों की बाबत राय देने के लिए जिस अगले मुद्दे को विचार के लिए निर्देशित किया गया है वह मुद्दा संविधान के अनुच्छेद 356 को लागू करने के संबंध में है । निर्वाचन आयोग द्वारा आनुषंगिक रूप से अनुच्छेद 356 को निर्दिष्ट किया गया है और आयोग ने यह निर्देश यह इंगित करने के लिए किया है कि यदि अनुच्छेद 174 का अनुपालन नहीं किया जा सकता है तो इसका व्यवहार्य अनुकल्प यह हो सकता है कि, अनुच्छेद 356 का अवलम्ब लेकर आपात की घोषणा की जाए । मेरा यह मत है कि निर्वाचन आयोग द्वारा जो हल सुझाया गया है वह उचित या न्यायोचित नहीं है । इन परिस्थितियों में से किसी भी परिस्थिति के अधीन अनुच्छेद 356 लागू नहीं किया जा सकता है । अनुच्छेद 356 को लागू करने की एक स्वतंत्र शक्ति है और इस शक्ति का प्रयोग यदा-कदा ही किया जाना चाहिए और यह शक्ति कई सांविधानिक सीमाओं से बंधी हुई हैं । ऊपर जो चर्चा की गई है उसको ध्यान में रखते हुए जो तीन प्रश्न निर्देश के लिए किए गए हैं उनका निम्नलिखत रूप से उत्तर दिया जा सकता है ।

(i) क्या विधानसभा के निर्वाचनों के कार्यक्रम के लिए अनुच्छेद 324 के अधीन भारत निर्वाचन आयोग का विनिश्चय के अध्यधीन अनुच्छेद 174 है या नहीं ?

108. अनुच्छेद 174 और अनुच्छेद 324 अलग-अलग क्षेत्रों में लागू होते हैं । अनुच्छेद 174 विघटित विधानसभाओं को लागू नहीं होता है । विधानसभा के निर्वाचन के कार्यक्रम को इस स्थिति की शीघ्रता को ध्यान में रखते हुए नियत किया जाना चाहिए कि लोकतांत्रिक निर्वाचित सरकार अस्तित्व में आ जाए और विधानसभा के विघटन के तुरन्त पश्चात् निर्वाचन प्रक्रिया आरंभ हो जानी चाहिए । यद्यपि, स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन कब कराए जाएं इसका विनिश्चय करने का प्राधिकार निर्वाचन आयोग का है किन्तु उसका विनिश्चय न्यायसंगत और युक्तियुक्त होना चाहिए और सभी सुसंगत परिस्थितियों पर विचार करने के पश्चात् उसे इस संबंध में निष्कर्ष निकालना चाहिए । यदि अयुक्तियुक्त आधारों पर निर्वाचन मुल्तवी का विनिश्चय किया जाता है तो ऐसा विनिश्चय लोकतांत्रिक

सरकार के लिए एक अभिशाप है और पारंपरिक स्वीकृत आधारों पर ऐसा विनिश्चय न्यायिक पुनर्विलोकन के अध्यधीन है ।

(ii) क्या किसी विधानसभा के निर्वाचनों के कार्यक्रम को विरचित करने के लिए भारत निर्वाचन आयोग इस वाक्य आधार पर कि अनुच्छेद 174 के आदेश के उल्लंघन की दशा में राष्ट्रपति अनुच्छेद 356 का अवलम्ब लेकर इसका प्रतिसमाधान कर सकते हैं ?

109. विधानसभा के विघटन के तुरन्त पश्चात् नई विधानसभा के निर्वाचन के लिए कार्यक्रम विरचित करने का प्रयास निर्वाचन आयोग को करना चाहिए और उसको इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि विघटन की छह मास की अवधि के भीतर नई विधानसभा का अधिवेशन हो जाए । अनुच्छेद 356 को लागू करके राज्य में आपातकाल की घोषणा करने का संबंध निर्वाचन कार्यक्रम को नियत करने की सुसंगतता से नहीं है ।

(iii) क्या भारत निर्वाचन आयोग का स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन कराने के लिए संघ और राज्य के अपेक्षित सभी संसाधनों को अपने अधीन करके संविधान के अनुच्छेद 174 के आदेश को कार्यान्वित करने का कर्तव्य है?

110. विधानसभा की समय अवधि के समाप्त हो जाने के पश्चात् या उसका विघटन या अन्यथा के पश्चात् निर्वाचन आयोग का यह सांविधानिक कर्तव्य है कि शीघ्रता से निर्वाचन कराए । निर्वाचन आयोग द्वारा परिकल्पित कार्यक्रम के अनुसार यदि स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन कराने में कोई बाधा है तब निर्वाचन आयोग संघ और राज्य के सभी अपेक्षित संसाधनों को अपने अधीन करके स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन कराएगा । यद्यपि,निर्वाचन आयोग द्वारा ऐसी सांविधानिक बाध्यताओं का निर्वहन करने के संबंध में अनुच्छेद 174 लागू नहीं होता है । निर्वाचन आयोग का यह कर्तव्य है कि वह यह सुनिश्चित करे कि निर्वाचन स्वतंत्र और निष्पक्ष रीति से कराए जाएं और शीघ्रता से लोकतांत्रिक सक्रिय सरकार बन सके ।

न्या. अरिजीत पसायत —

111. स्वतंत्र, निष्पक्ष और सामयिक निर्वाचन भारत के संविधान, 1950 (जिसे संक्षेप में 'संविधान' कहा गया है) के आधारभूत ढांचे का भाग है । लोकतंत्र में साधारण व्यक्ति अर्थात् मतदाता का अत्यधिक महत्व है और स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचनों के अनुक्रम से इसे वंचित नहीं किया जा सकता ।

112. 'लोकतंत्र' और 'स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन' एक सिक्के के दो पहलू हैं । इन दोनों के बीच अटूट संबंध है । साधारण व्यक्ति (मतदाता) का मतपत्र लोकतंत्र की संवेग भावना है न कि कुछ व्यक्तियों द्वारा कराई गई हिंसा का सहारा लेकर (जैसे कि गोली आदि चलाकर मतदान केन्द्रों पर कब्जा आदि करना) शक्ति हथियाना । मतदान केन्द्र तक साधारण व्यक्ति (मतदाता) का रास्ता अबाध होना चाहिए और उसे अपनी पसंद का अभ्यर्थी चुनने की स्वतंत्रता होनी चाहिए । स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन का यही आधार है ।

113. संदेश का संबंध लोकतंत्रात्मक निर्वाचनों की व्यापकता से है, इस बाबत सर विन्स्टल चर्चिल ने अपने अद्वितीय शब्दों में स्पष्ट किया है :–

> "लोकतंत्र को अर्पित सभी बलिदानों के पीछे वह साधारण व्यक्ति (मतदाता) होता है जो छोटे-से मतदान केन्द्र तक जाता है और एक छोटी-सी पेंसिल से एक छोटे-से कागज पर एक छोटा-सा क्रॉस लगाता है और ऐसे मतदाता को किसी भी प्रकार की भाषणबाजी या लम्बी-चौड़ी चर्चा संभवतः इस मुद्दे के उस अत्यधिक महत्व को कम नहीं कर सकती ।"

114. यदि इसके अलावा कुछ और कहें तो वह यह होगा कि साधारण होते हुए भी भारतीय मतदाताओं को भीड़ की ताकत दिखाकर स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन के मार्ग से विचलित नहीं किया जा सकता या ऐसे धूर्त पथभ्रष्ट व्यक्तियों द्वारा जो 'जनता को भ्रम में डालने के लिए अजीबोगरीब वेशभूषा अपनाते हैं, जिनके पास थोड़े

समय के लिए प्राधिकार होते हैं' वे जनता को बहका नहीं सकते हैं । 'ऐसे व्यक्ति चाहे जितने भी बड़े पद पर क्यों न बैठे हों परन्तु वह कानून से ऊपर नहीं हैं' ।

115. इस नैतिक उपदेश को विलियम पिट के शब्दों में प्रभावपूर्ण रूप से संक्षेप में निम्नलिखित रूप से कहा जा सकता है : 'जहां विधियां समाप्त होती हैं वहां कठोरता प्रारंभ हो जाती है' । इन दोनों अधिदेशों को समाविष्ट करते हुए और उनके संयुक्त प्रभाव पर जोर देते हुए प्रारंभिक विधि और शक्ति की नीतियां सर्वोत्तम रूप से बेंजामिन डिजरैली द्वारा निम्नलिखित रूप से अभिव्यक्त की गई है :–

"मैं फिर दोहराता हूं .... कि समस्त शक्तियां न्यास के रूप में है – और इन शक्तियों का प्रयोग करने के लिए हम जवाबदेही हैं – और ये शक्तियां जनता से आती हैं और जनता के लिए होती हैं और ये सभी जनता के लिए होनी चाहिएं ।"

116. आरंभ में : यह निर्देश क्यों किया गया और इसकी पृष्ठभूमि में क्या है, हम इस पर विचार करेंगे ।

117. गुजरात विधानसभा का अधिवेशन तारीख 3 अप्रैल, 2002 को हुआ था और उसके पश्चात् तारीख 19 जुलाई, 2002 को इसका विघटन कर दिया गया । निर्वाचन आयोग ने तारीख 16 अगस्त, 2002 को एक आदेश जारी किया और यह अभिनिर्धारित किया कि गुजरात राज्य में स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन कराना संभव नहीं है यद्यपि संविधान के अनुच्छेद 174 में आज्ञापक रूप से यह उपबंध किया गया है कि दो सदनों की बैठकों के बीच छह मास से अधिक का समय नहीं होना चाहिए । इस संदर्भ में निर्वाचन आयोग ने यह अभिनिर्धारित किया था कि अनुच्छेद 324 में 'स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन' के संबंध में उपबंध किए गए हैं और जब इस प्रकार के निर्वाचन कराना संभव न हो तब अनुच्छेद 174 में अंतर्विष्ट उपबंध अनुच्छेद 324 के अध्यधीन हो जाते हैं । इस वजह से संदेह उत्पन्न हुआ और भारत के राष्ट्रपति ने संविधान के अनुच्छेद 143(1) के अधीन इस न्यायालय को यह निर्देश किया । मूल रूप से महत्वपूर्ण विवाद्यक है और इन तीनों प्रश्नों को निर्दिष्ट किया गया है । अनुच्छेद 174 और अनुच्छेद 324 के संबंध में विनिर्दिष्ट रूप से प्रथम प्रश्न को निर्दिष्ट किया गया है । निर्वाचन आयोग ने यह मत व्यक्त किया है कि यदि अनुच्छेद 174 के अधीन विहित की गई अवधि का पालन नहीं किया जा सकता है तो उस परिस्थिति का सामना करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 356 द्वारा राष्ट्रपति शासन अधिरोपित किया जा सकता है । निर्देश (जिसके अंतर्गत उद्देशिका भी है) और निर्देश के लिए यथा सुसंगत निर्वाचन आयोग के आदेश का सुसंगत भाग निम्नलिखित है :–

राष्ट्रपतीय निर्देश :

"गुजरात राज्य की विधानसभा का विघटन तारीख 19 जुलाई, 2002 को कर दिया गया था और यह विघटन इस विधानसभा की तारीख 18 मार्च, 2003 को उसकी सामान्य अवधि पूरी होने से पहले किया गया है ;

संविधान के अनुच्छेद 174(1) में यह उपबंध किया गया है कि विधानसभा के एक सत्र की अंतिम बैठक और आगामी सत्र की प्रथम बैठक के लिए नियत तारीख के बीच छह मास का अंतर नहीं होगा ;

निर्वाचन आयोग ने भी यह उल्लेख किया है कि अनुच्छेद 174 में यह आदेश किया गया है कि सदन के विघटन के पश्चात् भी प्रत्येक छह मास की अवधि में विधानसभा का अधिवेशन होगा और निरंतर रूप से निर्वाचन आयोग का यही मत रहा है कि सामान्य रूप से अनुच्छेद 174 द्वारा यथाअनुध्यात प्रत्येक छह मांस की अवधि में, यहां तक कि जब विधानसभा को विघटित कर दिया जाता है तब भी प्रत्येक छह मास में विधानसभा का अधिवेशन होना चाहिए ;

लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 15 के अधीन यह उपबंध किया गया है कि विधानसभा की अवधि समाप्त हो जाने या इसके विघटन पर राज्यपाल ऐसी तारीख या तारीखों को, जिसकी सिफारिश

निर्वाचन आयोग द्वारा की जाए, राज्य के शासकीय राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना द्वारा राज्य में से सब निर्वाचन क्षेत्रों से अपेक्षा करेगा कि वे सदस्य निर्वाचित करें ;

गुजरात राज्य के विधानसभा की अंतिम बैठक तारीख 3 अप्रैल, 2002 को हुई थी और इसलिए गठित नई विधानसभा की बैठक तारीख 3 अक्तूबर, 2002 को या उससे पहले होनी चाहिए ;

निर्वाचन आयोग ने तारीख 16 अगस्त, 2002 के अपने आदेश सं. 464/गुजरात-वि.स./2002 द्वारा गुजरात राज्य के लिए नई विधानसभा का गठन करने के लिए साधारण निर्वाचन कराने के लिए किसी तारीख की सिफारिश नहीं की है और यह मत व्यक्त किया है कि आयोग नवम्बर-दिसम्बर, 2002 में राज्य विधानसभा के साधारण निर्वाचन कराने के लिए उचित कार्यक्रम विरचित करने के संबंध में विचार करेगा । उक्त आदेश की प्रतिलिपि इसके साथ-साथ संलग्न है ;

भारत निर्वाचन आयोग के उपर्युक्त विनिश्चय के कारण भारत के संविधान के अनुच्छेद 174(1) के अधीन यथा उपबंधित छह मास की नियत अवधि के भीतर नई विधानसभा अस्तित्व में नहीं आ सकती है और विधानसभा का अधिवेशन नहीं हो सकता है ;

निर्वाचन आयोग ने यह अभिनिर्धारित किया है कि विद्यमान परिस्थिति में अनुच्छेद 174(1) के उपबंधों का अननुपालन का यह अर्थ होगा कि संविधान के अनुच्छेद 356(1) के अर्थान्तर्गत संविधान के उपबंधों के अनुसार राज्य सरकार कार्य नहीं कर सकती है इसलिए राष्ट्रपति को इस संबंध में हस्तक्षेप करना चाहिए ;

भारत निर्वाचन आयोग के उक्त आदेश की सांविधानिक विधिमान्यता की बाबत संदेह उत्पन्न हुआ है क्योंकि निर्वाचन आयोग के इस आदेश से संविधान के अनुच्छेद 174(1) के अधीन परिकल्पित आज्ञापक अपेक्षा का अननुपालन होगा जिसके परिणामस्वरूप राज्य विधानसभा की दो बैठकों के बीच छह मास से अधिक का अंतर हो जाएगा ;

इसमें ऊपर जो कथन किया गया है उसको ध्यान में रखते हुए मुझे यह प्रतीत होता है कि इसमें इसके पश्चात् उपवर्णित विधि के जो प्रश्न उद्भूत हुए हैं वे ऐसी प्रकृति के और ऐसे व्यापक महत्व के हैं कि उन पर भारत के उच्चतम न्यायालय की राय प्राप्त करना समीचीन है ;

इसलिए, मैं ए.पी.जे. अब्दुल कलाम, भारत का राष्ट्रपति, संविधान के अनुच्छेद 143 के खंड (1) के अधीन मुझे प्रदत्त की गई शक्तियों का प्रयोग करते हुए भारत के उच्चतम न्यायालय को निम्नलिखित प्रश्नों को उन पर विचार करने और रिपोर्ट देने के लिए निर्देशित करता हूं, अर्थात् :–

(i) क्या अनुच्छेद 174, विधानसभा के निर्वाचनों के कार्यक्रम के संबंध में अनुच्छेद 324 के अधीन भारत निर्वाचन आयोग के विनिश्चय के अध्यधीन है ?

(ii) क्या निर्वाचन आयोग इस आधार वाक्य के आधार पर किसी विधानसभा के निर्वाचन के लिए ऐसा कार्यक्रम विरचित कर सकता है जिससे अनुच्छेद 174 के आदेश का उल्लंघन होता हो और क्या राष्ट्रपति द्वारा अनुच्छेद 356 का अवलंब लेकर इसका प्रतिसमाधान किया जा सकता है ?

(iii) क्या भारत निर्वाचन आयोग स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन सुनिश्चित करने के लिए संघ और राज्य के सभी अपेक्षित संसाधनों को अपने अधीन करके संविधान के अनुच्छेद 174 के आदेश के अधीन अपने कर्तव्य को पूरा करने के लिए बाध्य है ?"

निर्वाचन आयोग का आदेश (सुसंगत भाग)

1. संविधान के अनुच्छेद 172(1) के निबंधनानुसार गुजरात राज्य की विधानसभा की समयावधि सामान्य रूप से तारीख 18 मार्च, 2003 को समाप्त होनी थी । इस बात को ध्यान में रखते हुए आयोग ने नई

विधानसभा का गठन करने के लिए गुजरात राज्य में आगामी साधारण निर्वाचन कराने की योजना वर्ष 2003 के आरंभिक भाग में हिमाचल प्रदेश, मेघालय, नागालैंड और त्रिपुरा की विधानसभाओं के साधारण निर्वाचन के साथ कराने की बनाई थी क्योंकि इन राज्यों की विधानसभा की अवधि भी सामान्य रूप से मार्च, 2002 के मास में समाप्त होनी थी ।

2. तथापि, संविधान के अनुच्छेद 174(2)(ख) के अधीन गुजरात के गवर्नर ने अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए तारीख 19 जुलाई, 2002 को समय से पहले गुजरात राज्य की विधानसभा का विघटन कर दिया । राज्य विधानसभा का इस प्रकार समय से पहले विघटन कर दिए जाने के पश्चात् यह मांग की जा रही है और विशेष रूप से भारतीय जनता पार्टी और कुछ अन्य छोटे दलों तथा समाजसेवी संस्थाओं द्वारा यह मांग की जा रही है कि आयोग द्वारा शीघ्रता से नई विधानसभा का गठन करने के लिए साधारण निर्वाचन कराए जाएं जिससे कि नई विधानसभा गठित हो जाने के पश्चात् उसके प्रथम सत्र का अधिवेशन तारीख 6 अक्तूबर, 2002 से पहले हो सके । अपनी इस मांग के समर्थन में उन्होंने संविधान के अनुच्छेद 174(1) को उद्धृत किया है जिसमें यह उपबंध किया गया है कि 'राज्यपाल, समय-समय पर राज्य के विधानमंडल के सदन या प्रत्येक सदन को ऐसे समय और स्थान पर, जो वह ठीक समझे, अधिवेशन के लिए आहूत करेगा, किन्तु उसके एक सत्र की अंतिम बैठक और आगामी सत्र की प्रथम बैठक के लिए नियत तारीख के बीच छह मास का अंतर नहीं होगा' । गुजरात की विघटित विधानसभा के अंतिम सत्र का सत्रावसान तारीख 6 अप्रैल, 2002 को किया गया था और यह दलील दी गई है कि नई विधानसभा का प्रथम सत्र तारीख 6 अक्तूबर, 2002 से पहले कराया जाना चाहिए और इसलिए आयोग के लिए यह आज्ञापक है कि वह तारीख 6 अक्तूबर, 2002 से पहले निर्वाचन कराए । इन्होंने यह भी दावा किया है कि गुजरात राज्य में स्थिति बिल्कुल सामान्य है और स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन कराने के योग्य है । यह बात इन तथ्यों से भी स्पष्ट है कि अप्रैल, 2002 में सफलतापूर्वक काफी क्षेत्रों में पंचायत के निर्वाचन कराए गए थे, एच.एस.सी. और एस.एस.सी. की परीक्षाएं शांतिपूर्वक हो गई हैं और विभिन्न धार्मिक पर्व जैसे कि रथयात्रा आदि भी बिना किसी उत्पात के शांतिपूर्वक पूरी हो गई है ।

* * * * * * *

4. आयोग ने संविधान के अनुच्छेद 174(1) के उपबंधों की सावधानीपूर्वक परीक्षा की है । आयोग ने विधानसभाओं के कृत्यों और उनका गठन करने के लिए निर्वाचन कराने से संबंधित संविधान के अन्य सुसंगत उपबंधों पर भी विचार किया है । विगत में आयोग का यही मत रहा है कि संविधान के अनुच्छेद 174(1) में जो छह मास की अवधि दी गई है वह न केवल अस्तित्वशील विधानसभा को लागू होती है अपितु पूर्व विधानसभा का विघटन किए जाने के पश्चात् नई विधानसभा के गठन को भी लागू होता है और विगत में ऐसा ही होता रहा है और हाल ही में गोवा विधानसभा का तारीख 27 फरवरी, 2002 को विघटन किया गया था तब भी ऐसा ही हुआ था और जब भी कभी संविधान के अनुच्छेद 174(2)(ख) के अधीन राज्यपाल द्वारा समय से पहले विधानसभा का विघटन किया जाता है (यह अनुच्छेद वहां पर लागू होता है जहां विधानसभा का विघटन कर दिए जाने के पश्चात् संविधान के अनुच्छेद 356 के अधीन राज्य का शासन राष्ट्रपति के अधीन नहीं किया गया है), किसी नई विधानसभा का गठन करने के लिए निर्वाचन ऐसी समयावधि के भीतर करा दिए जाते हैं जिससे कि नई विधानसभा का अधिवेशन विघटित विधानसभा के अंतिम सत्र की अंतिम तारीख से छह मास की अवधि के भीतर हो सके । संविधान के अनुच्छेद 85(2)(ख) के अधीन राष्ट्रपति द्वारा समय से पहले विघटित की गई लोकसभा – उदाहरणार्थ, वर्ष 1999, वर्ष 1998 और इससे पूर्व वर्ष 1991, 1979 और वर्ष 1971 में जब लोकसभा का समय से पहले विघटन किया गया था तब आयोग द्वारा इसी प्रकार की कार्रवाई की गई थी जिससे कि विघटित सदन की अंतिम बैठक से छह मास की अवधि के भीतर लोकसभा का अधिवेशन हो सके ।

5. इस प्रकार आयोग का निरंतर रूप से यह मत रहा है कि सामान्य रूप से संविधान के अनुच्छेद 174(1) द्वारा यथाअनुध्यात् प्रत्येक छह मास में विधानसभा का अधिवेशन होना चाहिए और ऐसा तब भी होना चाहिए जब विधानसभा समय से पहले विघटित कर दी गई हो (संविधान के अनुच्छेद 356 के अधीन यदि राज्य में राष्ट्रपति

शासन लागू कर दिया गया है तब ऐसा नहीं किया जा सकता) । विद्यमान मामले में आयोग का यह मत है कि इससे कोई अलग मत व्यक्त करने का कोई विश्वसनीय/न्यायोचित कारण नहीं है । वास्तव में यदि संविधान के अनुच्छेद 174 का निर्वचन करने के लिए इससे कोई अलग मत व्यक्त किया जाता है तो उसकी वजह से विधानसभा के दोनों सदनों के बीच काफी अंतर हो जाएगा और इस वजह से लोकतंत्र का दुरुपयोग होगा, संविधान में या प्रवृत्त किसी विधि के अधीन ऐसा कोई उपबंध नहीं है जिसमें कोई ऐसी अवधि विहित की गई हो जिसके दौरान पूर्व सदन का विघटन किए जाने के पश्चात् नई विधानसभा का गठन करने के लिए निर्वाचन कराए जाने हों । ऐसा करना संविधान के मूल स्कीम के प्रतिकूल होगा क्योंकि संविधान में यह विहित किया गया है कि राज्य के लिए एक विधानमंडल होगा (अनुच्छेद 168) और मंत्रिपरिषद् राज्य की विधानसभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगी [अनुच्छेद 164(2)] और यदि कोई मंत्री, जो निरंतर छह मास की अवधि तक राज्य के विधानमंडल का सदस्य नहीं है उस अवधि की समाप्ति पर मंत्री नहीं रहेगा [अनुच्छेद 164(4)] । संविधान के अनुच्छेद 85(1) में संसद के संबंध में भी इसी प्रकार की चिन्ताजनक स्थिति उत्पन्न हो जाएगी क्योंकि लोकसभा के सत्रों को करने के संबंध में इसी प्रकार के उपबंध किए गए हैं । यदि यह मत व्यक्त किया जाता है कि प्रत्येक छह मास के अंदर लोकसभा की बैठक कराना आवश्यक नहीं है और एक सदन का विघटन कर दिए जाने के पश्चात् निर्वाचनों को अनिश्चितकाल के लिए मुल्तवी कर दिया जाता है तो इससे हमने अपने संविधान में जिस कर्मठता के साथ जिस संसदीय पद्धति को खड़ा किया है वह पूरी की पूरी न केवल विनष्ट हो जाएगी अपितु भारतीय राजनीति और नागरिकों के प्रत्येक वर्ग के लिए यह घातक होगा ।

6. आयोग द्वारा ऊपर जो मत व्यक्त किया गया है वह इससे सुदृढ़ हो जाता है कि संविधान के अनुच्छेद 356 के अधीन किसी राज्य में जब भी कभी राष्ट्रपति शासन अधिरोपित किया गया है तब अनुच्छेद 174(1) के उपबंधों के संबंध में राष्ट्रपति या संसद द्वारा इस प्रकार का मत व्यक्त किया गया है । जब भी कभी संविधान के अनुच्छेद 356 के अधीन राष्ट्रपति द्वारा विगत में किसी राज्य की विधानसभा का विघटन किया गया है तब अधिकतर राष्ट्रपति द्वारा जारी की गई उद्घोषणा में अभिव्यक्त रूप से अनुच्छेद 174(1) के उपबंधों को निलंबित कर दिया गया है और इस उद्घोषणा के प्रवर्तन में रहने के दौरान संसद द्वारा इसका अनुमोदन भी किया गया है (देखें – उदाहरणार्थ, हाल ही में तारीख 10 फरवरी, 1999 को राष्ट्रपति द्वारा गोवा विधानसभा का विघटन करने के लिए जारी की गई उद्घोषणा जिसके अधीन राज्य में राष्ट्रपति शासन अधिरोपित किया गया है) । यदि अनुच्छेद 174(1) किसी विधानसभा को विघटित कर दिए जाने के पश्चात् लागू नहीं होता है जैसी कि कई अभ्यावेदनों द्वारा दलील दी गई है, तब उक्त उद्घोषणा द्वारा विधानसभा का विघटन कर दिए जाने के पश्चात् इस उपबंध को निलंबित करने का प्रश्न ही नहीं उठता है ।

* * * * * * *

8. आयोग की जानकारी में इस विवाद्यक की बाबत उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय की कोई नजीर नहीं है । आयोग को ऐसा प्रतीत होता है कि युक्तिसंगत मत यह हो सकता है कि संविधान के अनुच्छेद 174(1) में यह परिकल्पना की गई है कि एक सदन का विघटन कर दिए जाने के पश्चात् प्रत्येक छह मास के भीतर सामान्य रूप से किसी राज्य की विधानसभा का अधिवेशन होना चाहिए ।

9. आयोग को जिस अगले प्रश्न पर विचार करना है वह यह है कि क्या आयोग ऐसी परिस्थितियों के अधीन भी साधारण निर्वाचन कराने के लिए बाध्य है जबकि विघटित विधानसभा की अंतिम बैठक की तारीख से छह मास की अवधि में से कुछ ही शेष अवधि बची हो । आयोग इस मत को स्वीकार नहीं करता है । संविधान के अनुच्छेद 174(1) को अलग से नहीं पढ़ा जा सकता और संविधान के अन्य सुसंगत उपबंधों के साथ विशेष रूप से संविधान के अनुच्छेद 324 के साथ इसे पढ़ा जाना चाहिए । अनुच्छेद 324 संविधान के किसी अन्य अनुच्छेद के उपबंधों जिसके अंतर्गत अनुच्छेद 174(1) भी है, के अध्यधीन नहीं है और इस अनुच्छेद के अधीन

निर्वाचन आयोग को संसद और राज्य विधानसभा के निर्वाचनों के अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण और अन्य बातों के साथ-साथ निर्वाचक नामावलियों को तैयार करने और निर्वाचन कराने की शक्ति निहित की गई है। लोकतांत्रिक संस्थाओं के संदर्भ में निर्वाचनों का अर्थ स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन कराया जाना है, यह कोई समय-समय पर कराया जाने वाला कोई कर्मकांड नहीं है। टी.एन. शेषन **बनाम** भारत संघ और अन्य (1995) 4 एस. सी. सी. 61 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय की संविधान न्यायपीठ ने इस संबंध में निम्नलिखित मत व्यक्त किया है :–

"लोकतंत्र हमारे संविधान का एक आधारभूत ढांचा है और इस संबंध में दो राय नहीं हो सकती हैं कि हमारी विधायी निकायों का निर्वाचन स्वतंत्र और निष्पक्ष होना चाहिए और केवल इस आधार पर ही देश में स्वस्थ लोकतंत्र फल-फूलने की गारंटी दी जा सकती है। निर्वाचन प्रक्रिया की शुद्धता को सुनिश्चित करने के लिए हमारे संविधान निर्माताओं ने यह सोचा कि देश में स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन कराने की जिम्मेदारी एक स्वतंत्र निकाय के सुपुर्द कर दिया जाए जिसमें राजनीतिक और/या कार्यपालिक हस्तक्षेप नहीं हो सके।"

विख्यात केशवानंद भारती **बनाम** केरल राज्य [1973] 2 उम. नि. प. 159 = ए.आई.आर. 1973 एस.सी. 164 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय की संविधान न्यायपीठ ने यह मत व्यक्त किया था कि 'किसी लोकतांत्रिक राजनीति के लिए स्वतंत्र, निष्पक्ष, निर्भीक और पक्षपातहीन निर्वाचन ही गारंटी है।' इसी प्रकार मोहिन्दर सिंह गिल **बनाम** मुख्य निर्वाचन आयुक्त और अन्य [1978] 4 उम. नि. प. 847 = ए.आई.आर. 1978 एस.सी. 851 कन्हैया लाल उमर **बनाम** आर.के. त्रिवेदी [1986] 2 उम. नि. प. 17 = ए.आई.आर. 1986 एस.सी. 111 वाले मामलों और कई अन्य विनिश्चयों में उच्चतम न्यायालय ने इसी प्रकार बार-बार स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचनों के संबंध में मत व्यक्त किए हैं। मोहिन्दर सिंह गिल (ऊपर) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया है :–

"स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन सार्वभौम, वयस्क मताधिकार पर आधारित होते हैं......यह अभिनिर्धारित करने के लिए अधिक बहस नहीं की जा सकती है कि स्वतंत्र और सामयिक निष्पक्ष निर्वाचन ही संसदीय पद्धति की जान है और यह निर्वाचन वयस्क मताधिकार पर आधारित होते हैं तथा सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र के लिए यह अत्यधिक आवश्यक है।"।

इसी प्रकार निर्वाचनों से संबंधित उच्चतम न्यायालय के प्रत्येक विनिश्चय में विधायी निकायों के स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचनों के संबंध में जोर दिया गया है।

* * * * * * *

11. इस प्रकार संविधान के अनुच्छेद 324 के अधीन निर्वाचन आयोग को यह आदेश दिया गया है कि वह विधायी निकायों के स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन कराए। यदि आयोग का यह सुविचारित मत है कि विद्यमान असाधारण परिस्थितियों के कारण किसी समय विधायी निकायों के स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन नहीं कराए जा सकते हैं तब वास्तविक लोकतंत्र और निर्वाचनों की शुद्धता के हित में संविधान का अनुच्छेद 174 अनुच्छेद 324 के अधीन हो जाएगा। इसके अतिरिक्त आयोग के सुविचारित मत में अनुच्छेद 174(1) और अनुच्छेद 324 के उपबंधों का इस प्रकार निर्वचन करने से ऐसी कोई स्थिति उत्पन्न नहीं होगी जो संविधान के अधीन अनुध्यात् नहीं है या जिसकी इसके अधीन परिकल्पना नहीं की जा सकती है और जिससे संविधान के उपबंधों के अनुसार निपटा नहीं जा सकता है। उपर्युक्त दशा में यदि अनुच्छेद 174(1) के उपबंधों का अननुपालन नहीं किया जाता है तो उसका अर्थ यह होगा कि संविधान के अनुच्छेद 356(1) के अर्थान्तर्गत संविधान के उपबंधों के अनुसार राज्य की सरकार को चलाया नहीं जा सकता है और इसलिए राष्ट्रपति को हस्तक्षेप करना होगा।

* * * * * * *

61. निर्वाचक नामावलियों को ठीक करने के कार्य को पूरा करने और उन्हें यथासंभव अद्यतन बना देने के पश्चात् तथा राज्य में जब स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन कराने से संबंधित परिस्थितियां उत्पन्न हो जाएं तब आयोग नवम्बर/दिसम्बर, 2002 के मास में राज्य विधानसभा के साधारण निर्वाचन के लिए उचित कार्यक्रम विरचित करने के संबंध में विचार करेगा ।

118. यहां यह उल्लेख किया जा सकता है कि निर्वाचन आयोग ने जो लिखित निवेदन फाइल किए हैं और हमारे समक्ष उसने जो निवेदन किए हैं उनमें उसने यह कहा है राष्ट्रपति शासन लागू करने से संबंधित मताभिव्यक्तियां संविधान के अनुच्छेद 356 के प्रसंग में नहीं की गई थीं और इस संबंध में हम बाद में व्यापक रूप से विचार करेंगे । तीसरे प्रश्न का संबंध अनुच्छेद 174 के संबंध में शक्ति का प्रयोग किए जाने से है ।

119. हमारे समक्ष जब इस निर्देश की सुनवाई आरंभ हुई, तब हमने पक्षकारों को यह स्पष्ट कर दिया था कि हम निर्वाचन आयोग द्वारा अपने आदेश में निकाले गए वास्तविक निष्कर्षों की शुद्धता के बारे में विचार नहीं करेंगे । हम केवल विधिक विवाद्यकों निर्वाचन आयोग के आदेश के आधारों अर्थात् किस आधार पर इस आदेश को अभिलिखित किया गया है का ही केवल विश्लेषण करेंगे । हमने पक्षकारों के विद्वान काउंसेलों को यह भी इंगित कर दिया था कि इस निर्देश पर विचार करते समय हम किसी अंतर्ग्रस्त प्रतिकूल वाद पर विचार नहीं कर रहे हैं । हम पक्षकारों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान काउंसेल जिन्होंने न्यायमित्र के रूप में अपनी दलीलें हमारे समक्ष पेश की हैं, सराहना करते हैं यद्यपि उनके दृष्टिकोणों में भिन्नता थी ।

120. कुछ विद्वान काउंसेलों द्वारा यह दलील दी गई कि इस निर्देश का उत्तर दिए जाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि जो प्रश्न उद्भूत हुए हैं वे प्रश्न निर्वाचन आयोग के आदेश से उद्भूत नहीं हुए हैं यद्यपि इसकी उद्देशिका इसी पर आधारित है । न्यायालय के लिए निर्देश का उत्तर दिए जाना अनिवार्य नहीं है और यदि इस संबंध में कोई संदेह है, तो उन संदेहों का ऐसे काल्पनिक आधारों पर उत्तर नहीं दिया जा सकता कि यह प्रश्न राजनीति से प्रेरित है परामर्शी अधिकारिता अपीली प्रकृति की नहीं है (देखें **डा. एम. इस्माइल फारुकी और अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य**[1] और **कावेरी जल विवाद अधिकरण**[2] वाले मामले) ।

121. **द एलोकेशन ऑफ लैंड्स एण्ड बिल्डिंग्स इन ए चीफ कमीशनर्स प्रोविन्स**[3] वाले मामले में गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट की धारा 213(1), जोकि अनुच्छेद 143 के समान है, के अधीन फेडरल कोर्ट में एक निर्देश किया गया था । इस मामले में यह मत व्यक्त किया गया था कि इस धारा के निबंधनानुसार न्यायालय इस निर्देश को स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं है और यदि न्यायालय ऐसे निर्देश को स्वीकार करना नहीं चाहता है तो उसके कुछ कारण होने चाहिएं । इस न्यायालय ने इस निर्देश को जिन कारणोंवश ग्रहण किया है वे कारण सांविधानिक महत्व और लोक हित के प्रतीत होते हैं ।

122. **केरल शिक्षा विधेयक**[4] वाले मामले में मुख्य न्यायमूर्ति दास ने **द एलोकेशन ऑफ लैंड्स एण्ड बिल्डिंग्स** (ऊपर) वाले मामले में और **लैवी ऑफ एस्टेट ड्यूटी**[5] वाले मामले में किए गए निर्देश के प्रति किया और दोनों मामलों में यह मत व्यक्त किया था कि निर्देश ग्रहण करने से तब तक इनकार नहीं किया जा सकता है जब तक कि ऐसा करने के उपयुक्त कारण न हों । इस न्यायालय ने निर्देश को विधि के उत्पन्न होने वाले या जिनके उत्पन्न

[1] (1994) 6 एस. सी. सी. 360.
[2] (1993) सप्ली. 1 एस. सी. सी. 96(ii).
[3] ए.आई.आर. 1973 फेडरल कोर्ट 13.
[4] ए.आई.आर. 1958 एस.सी. 956 = [1959] एस.सी.आर. 995.
[5] ए.आई.आर. 1944 फेडरल कोर्ट 73.

होने की सम्भावना है उन प्रश्नों के आधार पर स्वीकार किया । **केरल शिक्षा विधेयक** (ऊपर) वाले मामले में मुख्य न्यायमूर्ति दास ने यह मत व्यक्त किया था कि राष्ट्रपति ही यह अवधारण कर सकते हैं कि किन प्रश्नों को निर्देशित किया जाए और यदि राष्ट्रपति को उपबंधों के संबंध में कोई गंभीर "संदेह" नहीं है , तब कोई भी पक्षकार यह नहीं कर सकता है कि निर्देश के प्रति कोई संदेह है । संक्षेप में निर्देश में हाजिर होने वाले पक्षकार निर्देश के पीछे की बातों पर नहीं जा सकते हैं और संदेह करके नए प्रश्न प्रस्तुत नहीं कर सकते हैं [देखें **राष्ट्रपतीय निर्वाचन का मामला**[1]] ।

123. यह न्यायालय निर्देश के आदेश में किए गए कथनों से आबद्ध है । अनुच्छेद 145(1) के अधीन हम निर्देश में उपवर्णित तथ्य के कथनों को स्वीकार करते हैं । तथ्यों की सत्यता या अन्यथा के संबंध में जांच नहीं की जा सकती है और न ही इनके पीछे जाया जा सकता है और न ही न्यायालय निर्देश करने वाले प्राधिकारी की सद्भाविकता या अन्यथा से संबंधित प्रश्न पर विचार ही कर सकता है । यह न्यायालय निर्देश में किए गए कथनों की पृष्ठभूमि पर विचार नहीं कर सकता है । यह न्यायालय अनुच्छेद 143(1) के अधीन अपनी परामर्शी अधिकारिता के अन्तर्गत तथ्य के विवादित प्रश्नों पर विचार नहीं कर सकता है ।

124. विशेष निर्देश (1964 का संख्यांक 1) [जिसे सामान्य रूप से **केशव सिंह अवमान**[2] वाले मामले के रूप में जाना जाता है] वाले मामले में सात न्यायाधीशों वाले न्यायपीठ ने जो अधिकथित किया है, हमारे अनुसार वही सही दृष्टिकोण है । पृष्ठ 429, 430 और 440 पर उपवर्णित प्रश्नों से वास्तविक विवाद्यकों (जैसाकि पृष्ठ 439 पर स्पष्ट है) को निकालने के पश्चात् यह मत व्यक्त किया गया :-

> "यद्यपि हमारे समक्ष जिन प्रश्नों को उठाया गया है उनसे उत्पन्न समस्या का अंतिम हल बहुत ही सूक्ष्म है, फिर भी इस समस्या के ऐसे कुछ व्यापक पहलुओं पर विचार करना आवश्यक है जो आनुषंगिक रूप से उत्पन्न हुए और जिनके विनिश्चय से हमें वर्तमान निर्देश में विरचित प्रश्नों का उत्तर देने में सहायता प्राप्त होगा ।" (जोर देने के लिए रेखांकन किया गया)

125. संविधान, लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 और गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 (संक्षेप में 'गवर्नमेण्ट ऐक्ट') के कतिपय महत्वपूर्ण उपबंधों का उल्लेख करना उपयुक्त होगा ।

> **अनुच्छेद 172 : राज्यों के विधान-मंडलों की अवधि** – (1) प्रत्येक राज्य की प्रत्येक विधानसभा, यदि पहले ही विघटित नहीं कर दी जाती है, तो अपने प्रथम अधिवेशन के लिए नियत तारीख से पांच वर्ष तक बनी रहेगी, इससे अधिक नहीं और पांच वर्ष की उक्त अवधि की समाप्ति का परिणाम विधानसभा का विघटन होगा :
>
> परंतु उक्त अवधि को, जब आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में है, तब संसद् विधि द्वारा, ऐसी अवधि के लिए बढ़ा सकेगी, जो एक बार में एक वर्ष से अधिक नहीं होगी और उद्घोषणा के प्रवर्तन में न रह जाने के पश्चात् किसी भी दशा में उसका विस्तार छह मास की अवधि से अधिक नहीं होगा ।
>
> (2) राज्य की विधान परिषद् का विघटन नहीं होगा, किंतु उसके सदस्यों में से यथासंभव निकटतम एक-तिहाई सदस्य संसद द्वारा विधि द्वारा इस निमित्त बनाए गए उपबंधों के अनुसार, प्रत्येक द्वितीय वर्ष की समाप्ति पर यथाशक्य शीघ्र निवृत्त हो जाएंगे ।
>
> **अनुच्छेद 174 : राज्य के विधान-मंडल के सत्र, सत्रावसान और विघटन** – (1) राज्यपाल, समय-समय पर, राज्य के विधान-मंडल के सदन या प्रत्येक सदन को ऐसे समय और स्थान पर, जो वह ठीक समझे, अधिवेशन के लिए आहूत करेगा, किंतु उसके एक सत्र की अंतिम बैठक और आगामी सत्र की प्रथम बैठक के लिए नियत तारीख के बीच छह मास का अंतर नहीं होगा ।

---

[1] (1974) 2 एस. सी. सी. 33.

[2] [1965] 1 एस. सी. आर. 413.

(2) राज्यपाल, समय-समय पर –

(क) सदन का या किसी सदन का सत्रावसान कर सकेगा;

(ख) विधानसभा का विघटन कर सकेगा ।

अनुच्छेद 324 : निर्वाचनों के अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण का निर्वाचन आयोग में निहित होना – (1) इस संविधान के अधीन संसद और प्रत्येक राज्य के विधानमंडल के लिए कराए जाने वाले सभी निर्वाचनों के लिए तथा राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के पदों के लिए निर्वाचनों के लिए निर्वाचक-नामावली तैयार कराने का और उन सभी निर्वाचनों के संचालन का अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण, एक आयोग में निहित होगा (जिसे इस संविधान में निर्वाचन आयोग कहा गया है)

(2) निर्वाचन आयोग मुख्य निर्वाचन आयुक्त और उतने अन्य निर्वाचन आयुक्तों से, यदि कोई हों, जितने राष्ट्रपति समय-समय पर नियत करे, मिलकर बनेगा तथा मुख्य निर्वाचन आयुक्त और अन्य निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति, संसद द्वारा इस निमित्त बनाई गई विधि के उपबंधों के अधीन रहते हुए, राष्ट्रपति द्वारा की जाएगी।

(3) जब कोई अन्य निर्वाचन आयुक्त इस प्रकार नियुक्त किया जाता है तब मुख्य निर्वाचन आयुक्त निर्वाचन आयोग के अध्यक्ष के रूप में कार्य करेगा ।

(4) लोकसभा के और प्रत्येक राज्य की विधानसभा के प्रत्येक साधारण निर्वाचन से पहले तथा विधान परिषद् वाले प्रत्येक राज्य की विधान परिषद् के लिए प्रथम साधारण निर्वाचन से पहले और उसके पश्चात् प्रत्येक द्विवार्षिक निर्वाचन से पहले, राष्ट्रपति निर्वाचन आयोग से परामर्श करने के पश्चात् खंड (1) द्वारा निर्वाचन आयोग को सौंपे गए कृत्यों के पालन में आयोग की सहायता के लिए उतने प्रादेशिक आयुक्तों की भी नियुक्ति कर सकेंगे जितने वह आवश्यक समझें ।

(5) संसद द्वारा बनाई गई किसी विधि के उपबंधों के अधीन रहते हुए, निर्वाचन आयुक्तों और प्रादेशिक आयुक्तों की सेवा की शर्तें और पदावधि ऐसी होंगी जो राष्ट्रपति नियम द्वारा अवधारित करें :

परंतु मुख्य निर्वाचन आयुक्त को उसके पद से उसी रीति से और उन्हीं आधारों पर ही हटाया जाएगा, जिस रीति से और जिन आधारों पर उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जाता है अन्यथा नहीं और मुख्य निर्वाचन आयुक्त की सेवा की शर्तों में उसकी नियुक्ति के पश्चात् उसके लिए अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जाएगा :

परंतु यह और कि किसी अन्य निर्वाचन आयुक्त या प्रादेशिक आयुक्त को मुख्य निर्वाचन आयुक्त की सिफारिश पर ही पद से हटाया जाएगा, अन्यथा नहीं ।

(6) जब निर्वाचन आयोग ऐसा अनुरोध करे तब, राष्ट्रपति या किसी राज्य का राज्यपाल निर्वाचन आयोग या प्रादेशिक आयुक्त को उतने कर्मचारिवृंद उपलब्ध कराएगा जितने खंड (1) द्वारा निर्वाचन आयोग को सौंपे गए कृत्यों के निर्वहन के लिए आवश्यक हों ।

अनुच्छेद 327 : विधान-मंडलों के लिए निर्वाचनों के संबंध में उपबंध करने की संसद की शक्ति – इस संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए, संसद समय-समय पर, विधि द्वारा, संसद के प्रत्येक सदन या किसी राज्य के विधान-मंडल के सदन या प्रत्येक सदन के लिए निर्वाचनों से संबंधित या संसक्त सभी विषयों के संबंध में, जिनके अंतर्गत निर्वाचक-नामावली तैयार कराना, निर्वाचन-क्षेत्रों का परिसीमन और ऐसे सदन या सदनों का सम्यक् गठन सुनिश्चित करने के लिए अन्य सभी आवश्यक विषय हैं, उपबंध कर सकेगी ।

अनुच्छेद 356 : राज्यों में सांविधानिक तंत्र के विफल हो जाने की दशा में उपबंध – (1) यदि राष्ट्रपति का, किसी राज्य के राज्यपाल से प्रतिवेदन मिलने पर या अन्यथा, यह समाधान हो जाता है कि ऐसी स्थिति

उत्पन्न हो गई है जिसमें उस राज्य का शासन इस संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है तो राष्ट्रपति उद्घोषणा द्वारा –

(क) उस राज्य की सरकार के सभी या कोई कृत्य और राज्यपाल में या राज्य के विधान-मंडल से भिन्न राज्य के किसी निकाय या प्राधिकारी में निहित या उसके द्वारा प्रयोक्तव्य सभी या कोई शक्तियां अपने हाथ में ले सकेंगे;

(ख) यह घोषणा कर सकेंगे कि राज्य के विधान-मंडल की शक्तियां संसद द्वारा या उसके प्राधिकार के अधीन प्रयोक्तव्य होंगी;

(ग) राज्य के किसी निकाय या प्राधिकारी से संबंधित इस संविधान के किन्हीं उपबंधों के प्रवर्तन को पूर्णतः या भागतः निलंबित करने के लिए उपबंधों सहित ऐसे आनुषंगिक और पारिणामिक उपबंध कर सकेंगे जो उद्घोषणा के उद्देश्यों को प्रभावी करने के लिए राष्ट्रपति को आवश्यक या वांछनीय प्रतीत हों :

परंतु इस खंड की कोई बात राष्ट्रपति को उच्च न्यायालय में निहित या उसके द्वारा प्रयोक्तव्य किसी शक्ति को अपने हाथ में लेने या उच्च न्यायालयों से संबंधित इस संविधान के किसी उपबंध के प्रवर्तन को पूर्णतः या भागतः निलंबित करने के लिए प्राधिकृत नहीं करेगी ।

(2) ऐसी कोई उद्घोषणा किसी पश्चात्वर्ती उद्घोषणा द्वारा वापस ली जा सकेगी या उसमें परिवर्तन किया जा सकेगा ।

(3) इस अनुच्छेद के अधीन की गई प्रत्येक उद्घोषणा संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखी जाएगी और जहां वह पूर्ववर्ती उद्घोषणा को वापस लेने वाली उद्घोषणा नहीं है वहां वह दो मास की समाप्ति पर प्रवर्तन में नहीं रहेगी यदि उस अवधि की समाप्ति से पहले संसद के दोनों सदनों के संकल्पों द्वारा उसका अनुमोदन नहीं कर दिया जाता है :

परंतु यदि ऐसी कोई उद्घोषणा (जो पूर्ववर्ती उद्घोषणा को वापस लेने वाली उद्घोषणा नहीं है) उस समय की जाती है जब लोकसभा का विघटन हो गया है या लोकसभा का विघटन इस खंड में निर्दिष्ट दो मास की अवधि के दौरान हो जाता है और यदि उद्घोषणा का अनुमोदन करने वाला संकल्प राज्य सभा द्वारा पारित कर दिया गया है, किन्तु ऐसी उद्घोषणा के संबंध में कोई संकल्प लोकसभा द्वारा उस अवधि की समाप्ति से पहले पारित नहीं किया गया है , तो उद्घोषणा उस तारीख से जिसको लोकसभा अपने पुनर्गठन के पश्चात् प्रथम बार बैठती है, दिन की समाप्ति पर, प्रवर्तन में नहीं रहेगी यदि उक्त तीस दिन की अवधि की समाप्ति से पहले उद्घोषणा का अनुमोदन करने वाला संकल्प लोकसभा द्वारा भी पारित नहीं कर दिया जाता है ।

(4) इस प्रकार अनुमोदित उद्घोषणा, यदि वापस नहीं ली जाती है, तो ऐसी उद्घोषणा के किए जाने की तारीख से छह मास की अवधि की समाप्ति पर प्रवर्तन में नहीं रहेगी :

परंतु यदि और जितनी बार ऐसी उद्घोषणा को प्रवृत्त बनाए रखने का अनुमोदन करने वाला संकल्प संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित कर दिया जाता है तो और उतनी बार वह उद्घोषणा, यदि वापस नहीं ली जाती है, तो उस तारीख से जिसको वह इस खंड के अधीन अन्यथा प्रवर्तन में नहीं रहती, छह मास की और अवधि तक प्रवृत्त बनी रहेगी, किन्तु ऐसी उद्घोषणा किसी भी दशा में तीन वर्ष से अधिक प्रवृत्त नहीं रहेगी :

परंतु यह और कि यदि लोकसभा का विघटन छह मास की ऐसी अवधि के दौरान हो जाता है और ऐसी उद्घोषणा को प्रवृत्त बनाए रखने का अनुमोदन करने वाला संकल्प राज्य सभा द्वारा पारित कर दिया गया है, किन्तु ऐसी उद्घोषणा को प्रवृत्त बनाए रखने के संबंध में कोई संकल्प लोकसभा द्वारा उक्त अवधि के दौरान पारित नहीं किया गया है तो, उद्घोषणा उस तारीख से, जिसको लोकसभा अपने पुनर्गठन के पश्चात् प्रथम

बार बैठती है, तीस दिन की समाप्ति पर, प्रवर्तन में नहीं रहेगी यदि उक्त तीस दिन की अवधि की समाप्ति से पहले उद्घोषणा को प्रवृत्त बनाए रखने का अनुमोदन करने वाला संकल्प लोकसभा द्वारा भी पारित नहीं कर दिया जाता है :

परंतु यह भी कि पंजाब राज्य की बाबत 11 मई, 1987 को खंड (1) के अधीन की गई उद्घोषणा इस खंड में लागू नहीं होगी ।

लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951

धारा 14 : लोकसभा के साधारण निर्वाचन के लिए अधिसूचना (1) नई लोकसभा गठित करने के प्रयोजन के लिए साधारण निर्वाचन वर्तमान सदन की अस्तित्वावधि के अवसान पर या उसके विघटन पर किया जाएगा ।

(2) उक्त प्रयोजन के लिए राष्ट्रपति ऐसी तारीख या तारीखों को, जिनकी सिफारिश निर्वाचन आयोग द्वारा की जाए, भारत के राजपत्र में प्रकाशित एक या अधिक अधिसूचनाओं द्वारा सब संसदीय निर्वाचन-क्षेत्रों से अपेक्षा करेंगे कि वे इस अधिनियम के और तद्धीन बनाए गए नियमों और किए गए आदेशों के उपबंधों के अनुसार सदस्य निर्वाचित करें :

परंतु जहां कि वर्तमान लोकसभा के विघटन पर होने से अन्यथा साधारण निर्वाचन होता है, वहां ऐसी कोई अधिसूचना उस तारीख से, जिसको सदन की अस्तित्वावधि का अवसान अनुच्छेद 83 के खंड (2) के उपबंधों के अधीन होता, पूर्व के छह मास के पहले न निकाली जाएगी ।

धारा 15 : **राज्य की विधान सभा के लिए साधारण निर्वाचन के लिए अधिसूचना** – (1) नई विधानसभा गठित करने के प्रयोजन के लिए, साधारण निर्वाचन वर्तमान सभा की अस्तित्वावधि के अवसान पर या उसके विघटन पर किया जाएगा ।

(2) उक्त प्रयोजन के लिए राज्यपाल या प्रशासन ऐसी तारीख या तारीखों को, उनकी सिफारिश निर्वाचन आयोग द्वारा की जाए, राज्य के शासकीय राजपत्र में प्रकाशित एक या अधिक अधिसूचनाओं द्वारा राज्य में के सभी विधानसभा निर्वाचन-क्षेत्रों से अपेक्षा करेगा कि वे इस अधिनियम के और तद्धीन बनाए गए नियमों और किए गए आदेशों के उपबंधों के अनुसार सदस्य निर्वाचित करें :

परंतु जहां कि वर्तमान विधानसभा के विघटन पर होने से अन्यथा साधारण निर्वाचन होता है वहां ऐसी कोई अधिसूचना उस तारीख से, जिसको सभा की अस्तित्वावधि का अवसान अनुच्छेद 172 के खंड (1) के उपबंधों के अधीन या संघ राज्यक्षेत्र शासन अधिनियम, 1963 की धारा 5 के उपबंधों के अधीन होता, पूर्व के छह मास से ले न निकाली जाएगी ।

धारा 30 : नामनिर्देशनों आदि के लिए तारीखें नियत करना – जैसे ही सदस्य या सदस्यों को निर्वाचित करने के लिए निर्वाचन-क्षेत्र से अपेक्षा करने वाली अधिसूचना निकाली जाए वैसे ही निर्वाचन आयोग शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा –

(क) नामनिर्देशन करने के लिए अंतिम तारीख जो प्रथम वर्णित अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख के पश्चात् वाले सातवें दिन की होगी या यदि वह दिन लोक अवकाश दिन है तो निकटतम उत्तरवर्ती ऐसे दिन की होगी जो लोक अवकाश दिन नहीं है;

(ख) नामनिर्देशनों की संवीक्षा की तारीख जो नामनिर्देशन करने के लिए नियत अंतिम तारीख के अव्यवहित आगामी दिन की होगी या यदि वह दिन लोक अवकाश दिन है तो निकटतम उत्तरवर्ती ऐसे दिन की होगी जो लोक अवकाश दिन नहीं है;

(ग) अभ्यर्थिता वापस लेने के लिए नियत अंतिम तारीख, जो नामनिर्देशनों की संवीक्षा के लिए नियत तारीख के पश्चात् दूसरे दिन की होगी या यदि वह दिन लोक अवकाश दिन है तो निकटतम उत्तरवर्ती ऐसे दिन की होगी जो अवकाश दिन नहीं है;

(घ) वह तारीख या वह तारीखें जिसको या जिनको यदि आवश्यक हो तो मतदान होगा और जो तारीख या जिन तारीखों में से पहली तारीख अभ्यर्थिताएं वापस लेने के लिए नियत अंतिम तारीख के पश्चात् चौदहवें दिन से पूर्वत्तर न होने वाली तारीख होगी; तथा

(ङ) वह तारीख जिसके पूर्व निर्वाचन समाप्त कर दिया जाएगा ।

धारा 73 : लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के लिए साधारण निर्वाचनों के परिणामों का प्रकाशन – जहां कि नई लोकसभा या नई राज्य विधानसभा गठित करने के प्रयोजन के लिए साधारण निर्वाचन किया जाता है वहां सभी निर्वाचन-क्षेत्रों में जो उन निर्वाचन-क्षेत्रों से भिन्न हों जिनमें धारा 30 के खंड (घ) के अधीन मूलतः नियत तारीख को किसी कारणवश मतदान नहीं हो सका था जिनके लिए निर्वाचन समाप्त होने का समय धारा 153 के उपबंधों के अधीन बढ़ा दिया गया है, यथास्थिति, धारा 53 या धारा 66 के उपबंधों के अधीन रिटर्निंग आफिसर द्वारा परिणामों की घोषणा किए जाने के पश्चात् यथाशक्य शीघ्र उन सदस्यों के नाम जो उन निर्वाचन-क्षेत्रों से निर्वाचित हुए हों शासकीय राजपत्र में निर्वाचन आयोग द्वारा अधिसूचित किए जाएंगे और ऐसी अधिसूचना के निकलने पर उस लोकसभा या विधानसभा की बाबत यह समझा जाएगा कि वह सम्यक् रूप से गठित हो गई है:

परंतु ऐसी अधिसूचना के निकाले जाने से यह न समझा जाएगा कि वह –

(क) (i) किसी संसदीय या किसी सभा निर्वाचन-क्षेत्र या निर्वाचन-क्षेत्रों में जिनमें धारा 30 के खंड (घ) के अधीन मूलतः नियत तारीख को किसी कारणवश मतदान नहीं हो सका था, मतदान करने और निर्वाचन की समाप्ति को; अथवा

(ii) किसी संसदीय या किसी सभा निर्वाचन-क्षेत्र या निर्वाचन-क्षेत्रों के जिनके लिए धारा 153 के उपबंधों के अधीन समय बढ़ा दिया गया है, निर्वाचन की समाप्ति को, प्रवारित करती है; अथवा

(ख) उक्त अधिसूचना के निकाले जाने से अव्यवहित पूर्व कृत्य कर रही लोकसभा या राज्य विधानसभा की, यदि कोई हो, अस्तित्वावधि पर प्रभाव डालती है ।

***"गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट (भारत सरकार अधिनियम), 1935**

18. **फेडरल लेजिसलेचर का संविधान** - (1) एक फेडरल लेजिसलेचर होगा जोकि हीज मेजेस्टी के प्रतिनिधि गवर्नर जनरल और दो चेम्बरों से मिलकर बनेगा और इन चेम्बरों को क्रमशः काउंसिल ऑफ स्टेट और हाउस ऑफ असेम्बली (इस अधिनियम में "फेडरल असेम्बली" के रूप में निर्दिष्ट किया गया है) के नाम से जाना जाएगा ।

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :–

"Government of India Act, 1935.

18. Constitution of the Federal Legislature - (1) There shall be a Federal Legislature which shall consist of is Majesty represented by the Governor General and two Chambers, to be known respectively as the Council of State and the House of Assemble (in this Act referred to as "Federal Assembly").

(2) काउंसिल ऑफ स्टेट में ब्रिटिश इंडिया के 156 प्रतिनिधि होंगे और इंडियन स्टेट्स के 104 से अधिक प्रतिनिधि नहीं होंगे तथा फेडरल असेम्बली में ब्रिटिश इंडिया के 250 प्रतिनिधि होंगे और भारतीय स्टेट्स के 125 से अधिक प्रतिनिधि होंगे ।

(3) इस अधिनियम की प्रथम अनुसूची में अंतर्विष्ट इस निमित्त उपबंधों के अनुसार उक्त प्रतिनिधियों का चयन किया जाएगा ।

(4) काउंसिल ऑफ स्टेट एक स्थायी निकाय होगा जिसका विघटन नहीं होगा किन्तु उसके सदस्यों में से यथासमय निकटतम एक-तिहाई सदस्य उक्त प्रथम् अनुसूची में अंतर्विष्ट इस निमित्त उपबंधों के अनुसार प्रत्येक तीसरे वर्ष की समाप्ति पर निवृत्त हो जाएंगे ।

(5) प्रत्येक फेडरल असेम्बली जब तक कि उसका समय से पहले विघटन नहीं कर दिया जाता है, अपने प्रथम अधिवेशन के लिए नियत की गई तारीख से पांच वर्ष तक अस्तित्व में रहेगी और इससे अधिक नहीं और पांच वर्ष की उक्त अवधि के अवसान पर असेम्बली का विघटन हो जाएगा ।

19 लेजिसलेचर के सत्र, सत्रावसान और विघटन – (1) फेडरल लेजिसलेचर के चेम्बरों का प्रत्येक वर्ष में कम-से-कम एक बार अधिवेशन आहूत किया जाएगा और एक सत्र में उनकी अंतिम बैठक और आगामी सत्र में उनकी प्रथम बैठक के लिए नियत की गई तारीख के बीच बारह मास का अंतर नहीं होगा ।

(2) इस धारा के उपबंधों के अधीन रहते हुए गवर्नर जनरल समय-समय पर अपने विवेकाधिकार से –

(क) चेम्बरों या किसी चेम्बर का अधिवेशन ऐसें समय और स्थान पर आहूत कर सकेगा जो वह ठीक समझे;

(ख) चेम्बरों का सत्रावसान कर सकेगा;

---

(2) The Council of State shall consist of one hundred and fifty-six representatives of British India and not more than one hundred and four representatives of the Indian States and the Federal Assembly shall consist of two hundred and fifty representatives of British India and not more than one hundred and twenty-five representatives of the Indian States.

(3) The said representatives shall be chosen in accordance with the provisions in that behalf contained in the First Schedule to this Act.

(4) The Council of State shall be a permanent body not subject to dissolution, but as near as may be one-third of the members thereof shall retire in every third year in accordance with the provisions in that behalf contained in the said First Schedule.

(5) Every Federal Assembly unless sooner dissolved, shall continue for five years from the date appointed for their first meeting and no longer and the expiration of the said period of five years shall operate as a dissolution of the Assembly.

19 Sessions of the Legislature, prorogation and dissolution - (1) The Chambers of the Federal Legislature shall be summoned to meet once at least in every year and twelve months shall not intervene between their last sitting in one session and the date appointed for their first sitting in the next session.

(2) Subject to the provisions of this section, the Governor-General may in his discretion from time to time -

(a) summon the Chambers or either Chamber to meet at such time and place as he thinks fit;

(b) prorogue the Chambers;

(ग) फेडरल असेम्बली का विघटन कर सकेगा ।

(3) फेडरेशन स्थापित करने से पहले हीज मेजेस्टी की उद्घोषणा में इस निमित्त विनिर्दिष्ट की गई तारीख से प्रथम सत्र के अधिवेशन के लिए चेम्बरों का आहूत कर सकेगा और यह तारीख उद्घोषणा में विनिर्दिष्ट की गई तारीख के बाद की नहीं होगी ।"

126. उपर्युक्त पृष्ठभूमि में निर्देश में विरचित प्रश्नों का उत्तर देना समीचीन होगा ।

127. इन तीनों प्रश्नों का न्यायिक पहलू ही न्यायिक अधिकारिता को आकृष्ट कर सकता है । तथापि, यदि हम राजनीतिक रंग में न रंग कर अपने-आप को केवल विधिक संदिग्धताओं तक सीमित रखें, तो इस संबंध में इस न्यायालय के लिए न्यायमूर्ति होम्स के मत पर विचार करना आवश्यक है जोकि इस प्रकार है : "हम शांत हैं, किन्तु यह तूफान से पूर्व की शांति है" । तथापि; न्यायालय को अपना दृष्टिकोण विधिक - सामाजिक मार्गदर्शक सिद्धांतों और सैद्धांतिक व्यावहारिक अंतर्दृष्टि पर आधारित करते हुए मानवीय कृत्यों से संबंधित विभिन्न संकटों को हल करना चाहिए और विधिक और उपायों को अपनाया जाना चाहिए क्योंकि विधिसम्मत शासन के निबंधनानुसार विवाद के हल के लिए व्यक्ति न्यायालय का द्वार खटखटाता है । इस संबंध में न्यायमूर्ति कार्डोजो ने भी यह उचित मत व्यक्त किया है :–

"संविधान के महत्वपूर्ण सामान्य सिद्धांतों के सार और महत्व में समय-समय पर परिवर्तन होता रहता है ।"

मुख्य न्यायमूर्ति हिदायतुल्ला ने इस अंतर्दृष्टि के संबंध में अपनी यह धारणा व्यक्त की है :–

"हरेक व्यक्ति को विधि के आदेश के सिद्धांत में दिए गए प्राधिकृत सार या उसके नैतिक अर्थ के साथ सामंजस्य का अवश्य ही ध्यान रखना चाहिए, तथापि विधि के ऐतिहासिक विकास की अवहेलना भी नहीं की जा सकती है और न ही इस बात की अनदेखी की जा सकती है कि इसमें किसी विशिष्ट काल की सामाजिक अपेक्षाओं के अनुरूप परिवर्तन होते रहे ।"

128. सर्वोपरि विधि के पुराने अनुच्छेद को जीवन की नई चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार रहना चाहिए क्योंकि पुरानी अधिनियमितियां नवीन परिवर्तनों का सामना नहीं कर सकती हैं । इसलिए हमें ऐसी विधि अपनानी चाहिए और उसकी अदृश्य सम्भावनाओं को इस प्रकार विकसित करना चाहिए जिससे कि यदि असाधारण परिस्थितियां, जैसीकि अब हमारे सामने हैं, उत्पन्न हो जाएं, तो हम उनका सामना कर सकें । इसलिए हमने जो कारण दिए हैं और इस बाबत अपने जो विचार व्यक्त किए हैं वे विचार केवल शाब्दिक या कोष विषयक नहीं हैं अपितु संविधान के अनुच्छेदों और अधिनियम के उपबंधों का निर्वचन करने के लिए उदार और दूरदर्शितापूर्ण हैं । लार्ड डेनिंग्स ने इस संबंध में निम्नलिखित मत व्यक्त किया है :–

"विधि जड़ नहीं है । यह एक निरन्तर प्रक्रिया है । एक बार यह मान लेने पर कि न्यायाधीश का कार्य अत्यधिक महत्वपूर्ण बन जाता है और उसे विधि का सतर्कतापूर्वक इस प्रकार निर्वचन करना चाहिए जिससे कि समय की आवश्यकता को पूरा किया जा सके । न्यायाधीश कोई मैकेनिक नहीं होता है और न ही वह कोई कार्य करने वाला ऐसा कोई राज-मिस्त्री होता है जो समग्रतः डिजाइन पर विचार किए बिना जो ईंट के ऊपर ईंट रखता चला जाए अपितु न्यायाधीश का कार्य एक वास्तुशिल्पी का होना चाहिए जो समाज के लिए सुदृढ., टिकाऊ और न्यायसंगत विधि प्रणाली सम्भव बनाने के लिए सम्पूर्ण संरचना के बारे में सोचता है । उसके इसी कार्य पर ही सभ्य समाज आधारित होता है ।"

(c) dissolve the Federal Assembly.

(3) The Chambers shall be summoned to meet for their first session on a day not later than such day as may be specified in that behalf in His Majesty's Proclamation establishing the Federation."

संसद और राज्य विधानमंडलों के निर्वाचनों को कराने बाबत सांविधानिक स्कीम बिल्कुल स्पष्ट है । सर्वप्रथम संविधान में एक उच्च शक्ति प्राप्त निकाय की स्थापना के संबंध में उपबंध किया गया है जिसे संसद और राज्य विधानमंडलों तथा राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के पदों का निर्वाचन कराने का भार सुपुर्द किया गया है । यह निकाय निर्वाचन आयोग है । संविधान के अनुच्छेद 324 में आयोग का गठन और उसकी साधारण शक्ति की बाबत ब्यौरेवार उपबंध अंतर्विष्ट है । संविधान के अनुच्छेद 324(1) में निर्दिष्ट निर्वाचनों का अधीक्षण, निदेशन और निर्वाचनों के संचालन का नियंत्रण आयोग को सुपुर्द किया गया है । 'अधीक्षण', 'निदेशन' और 'नियंत्रण' शब्द इतने व्यापक हैं कि इनके अंतर्गत निर्वाचनों को सुगमतापूर्वक कराने के लिए सभी आवश्यक शक्तियां निर्वाचन आयोग को प्रदत्त की गई हैं । तथापि, संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची-1 की प्रविष्टि 72 के साथ पठित संविधान के अनुच्छेद 327 के अधीन संसद में संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए संसद के किसी सदन या राज्य के विधानमंडल के सदन या किसी भी सदन के निर्वाचनों के संबंध में सभी विषयों की बाबत विधि बनाने की शक्ति निहित की गई है । संविधान के उपबंधों और संसद द्वारा इस निमित्त बनाई गई विधि के अधीन रहते हुए किसी राज्य का विधानमंडल संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची-2 की प्रविष्टि 37 के साथ पठित अनुच्छेद 328 के अधीन उस राज्य के विधानमंडल के सदन या सदनों के निर्वाचनों के संबंध में विधि बना सकता है । अनुच्छेद 324(1) के अधीन आयोग में निर्वाचनों के अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण की जो साधारण शक्तियां विहित की गई हैं वे संविधान के अनुच्छेद 327 या अनुच्छेद 328 के अधीन बनाई गई किसी विधि के अध्यधीन है । अनुच्छेद 324 में 'निर्वाचन' शब्द का प्रयोग इतना व्यापक रूप से किया गया है जिससे कि अंतर्गत विभिन्न प्रक्रमों में अंतर्विष्ट निर्वाचन की पूरी प्रक्रिया सम्मिलित हो गई है और इसके अंतर्गत ऐसे और भी कई कदम हैं जिनमें से कुछ का इस प्रक्रिया के परिणामों के लिए बहुत महत्व है । संविधान के अनुच्छेद 324 ऐसे सभी क्षेत्रों में प्रवर्तित होता है जिनके संबंध में विधान नहीं बनाया गया है और 'अधीक्षण', 'निदेशन'और 'नियंत्रण' तथा 'सभी निर्वाचनों का संचालन' शब्द बहुत व्यापक हैं और इनके अंतर्गत ऐसे सभी उपबंध करने की शक्तियां सम्मिलित हैं (देखें **मोहिन्दर सिंह गिल** बनाम **मुख्य निर्वाचन आयुक्त**[1], **ए.सी. जोस** बनाम **साइवन पिल्लई**[2] और **कन्हैया लाल उमर** बनाम **आर.के. त्रिवेदी और अन्य**[3] वाले मामले) ।

129. संविधान की स्कीम पर विचार करने से पहले संविधान को विरचित करने के लिए जिस प्रतिरूप का अनुसरण किया गया उसकी कुछ ब्यौरों के साथ परीक्षा करना भी आवश्यक है । "बुद्धिजीवियों के लिए उपयुक्त और सम्पूर्ण जनमानस की अपेक्षा" को ध्यान में रखकर एक संविधान प्रतिरूप का विकास करने के संबंध में संविधान सभा द्वारा कोई वायदा नहीं किया गया था । संविधान सभा के समक्ष गवर्नमेण्ट ऐक्ट की कार्य प्रणाली का अनुभव था जिसकी अनेकों विशिष्टताएं नवीन संविधान के प्रयोजन के लिए स्वीकार की जा सकती थीं । हमारे संविधान में अन्य कई देशों अर्थात् यूनाईटेड किंग्डम, कनाडा, आस्ट्रेलिया, आयरलैंड, संयुक्त राज्य अमेरिका और स्वीट्जरलैंड से संविधानों से कई बातें ली गई हैं । संविधान सर्वोपरि है और सभी अंग तथा निकायों का अस्तित्व इसके कारण हैं । कोई एक अंग किसी दूसरे के ऊपर अपनी सर्वोपरिता का दावा नहीं कर सकता है और हरेक निकाय को संवैधानिक उपबंधों की परिधि के अंतर्गत ही कार्य करना होता है । संविधान की उद्देशिका में महत्वपूर्ण प्रयोजन, उद्देश्य और नीतियां अंतर्विष्ट हैं और इसके अंतर्गत राज्य के आधारभूत स्वरूप जो अस्तित्व में आना था, के अलावा ऐसे और भी कई उपबंध हैं अर्थात् संपूर्ण प्रभुत्वसंपन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य । कार्यपालिका की मुख्य जिम्मेदारी सरकारी नीतियों को बनाने की है और जहां आवश्यक हो वहां उसके संबंध में "विधि बनाना है" । कार्यपालिका के कृत्यों में नीति का अवधारण और उसको कार्यान्वित करना दोनों है । कार्यपालिका के कृत्यों के अंतर्गत विधान तैयार करना, व्यवस्था बनाए रखना, सामाजिक और आर्थिक कल्याण को बढ़ावा देना, विदेश नीति का निदेशन और वास्तव में राज्य के साधारण प्रशासन को चलाना और उसका पर्यवेक्षण करना है । सिविल सेवाओं और न्यायपालिका की स्थिति की

---

[1] [1978] 4 उम. नि. प. 847 = (1978) 1 एस. सी. सी. 404.

[2] [1984] 3 उम. नि. प्र. 1097 = (1984) 2 एस. सी. सी. 656.

[3] [1986] 2 उम. नि. प. 17 = (1985) 4 एस. सी. सी. 628.

बाबत ब्रिटिश आदर्श(मॉडल) अपनाया गया है क्योंकि भारत के उच्चतम न्यायालय और राज्यों के उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों की नियुक्ति को राजनीतिक संविवादों से मुक्त रखा गया है । इनकी स्वतंत्रता को सुनिश्चित किया गया है किन्तु इंग्लैंड में जो संसदीय संपूर्ण प्रभुत्वसंपन्नता का सिद्धांत है वह यहां पर विद्यमान नहीं है मात्र संविधान में ही इस बाबत कुछ उपबंध किए गए हैं । संविधान की पूरी स्कीम में स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचनों पर आधारित संसदीय संस्थाओं द्वारा गणराज्य और जीवन की लोकतंत्रात्मक पद्धति के रूप में संपूर्ण प्रभुत्वसंपन्नता और अखंडता सुनिश्चित की गई **केशवानंद भारती** (ऊपर) वाले मामले में इन पहलुओं के संबंध में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है ।

130. लोकतंत्र संविधान की एक आधारभूत विशिष्टता है । क्या सरकार की कोई विशिष्ट पद्धति या उसका स्वरूप उस समय तक आधारभूत विशिष्टता रखेगा जब तक कि वे आवश्यक विशिष्टताएं जो किसी सरकार की प्रणाली को लोकतंत्रात्मक बनाने के लिए आवश्यक है अन्यथा पूरी की जानी चाहिए पर विचार किए जाने की आवश्यकता नहीं है । संविधान में परिकल्पित लोकतंत्रात्मक पद्धति के लिए नियमित और विहित अंतरालों पर निर्वाचन कराना आवश्यक है । इसी प्रकार निर्वाचन प्रक्रिया की शुद्धता को बनाए रखना और उसका संरक्षण करना भी आवश्यक है अतः निर्वाचन संबंधी विवादों को तय किए जाने के लिए एक बेहतर, प्रभावशाली और समर्थ तंत्र आवश्यक है ।

131. पहले प्रश्न का आवश्यक रूप से संबंध दो अनुच्छेदों के बीच अर्थात् संविधान के अनुच्छेद 174 और अनुच्छेद 324 के बीच की पारस्परिक भूमिका से है । पूर्वोक्त दोनों अनुच्छेदों के पढ़ने मात्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये दोनों अनुच्छेद अलग-अलग क्षेत्रों में प्रवर्तित होते हैं । संविधान के भाग 6 अध्याय 3 में अनुच्छेद 174 है और इसका संबंध राज्य विधानमंडल से है । जहां तक संघ का संबंध है, वैसा ही उपबंध संविधान के भाग 5 के अध्याय 2 में अनुच्छेद 85 में है । भाग 6 अध्याय 3 जिससे हमारा संबंध राज्य विधानमंडल से संबंधित उपबंधों से है । अनुच्छेद 168 में यह उपबंध किया गया है कि प्रत्येक राज्य के लिए एक विधानमंडल होगा जो राज्यपाल और चार राज्यों में दो सदनों से और अन्य राज्यों में राज्य के एक सदन से मिलकर बनेगा । जहां किसी राज्य में विधानमंडल के दो सदन हैं, वहां एक का नाम विधान परिषद् और दूसरे का नाम विधानसभा होगा और जहां केवल एक सदन है वहां उसका नाम विधानसभा होगा । अनुच्छेद 172 में राज्य विधानमंडल की अवधि के संबंध में उपबंध किए गए हैं । अनुच्छेद 174 में राज्य विधानमंडल के सत्रों, सत्रावसान और विघटन के संबंध में उपबंध किए गए हैं । इसके खंड (1) के अधीन राज्यपाल से यह अपेक्षा की गई है कि वह राज्य के विधानमंडल के सदन या प्रत्येक सदन को ऐसे समय और स्थान पर जो वह ठीक समझे, अधिवेशन के लिए आहूत करेगा । इसमें आगे यह और उपबंध किया गया है कि उसके एक सत्र की अंतिम बैठक और आगामी सत्र की प्रथम बैठक के लिए नियत तारीख के बीच छह मास का अंतर नहीं होगा । इस निर्देश में विहित कालावधि के भीतर अधिवेशन से संबंधित अपेक्षा महत्वपूर्ण मुद्दा है । खंड (2) में राज्यपाल द्वारा (क) सदन या किसी सदन का सत्रावसान किए जाने या (ख) विधानसभा का विघटन किए जाने की शक्ति के संबंध में उपबंध है । अनुच्छेद 83 और 85 में भी लगभग इसी प्रकार के उपबंध किए गए हैं । जैसा कि विद्वान काउंसेलों में से कुछ विद्वान काउंसेलों द्वारा यह ठीक ही दलील दी गई कि अनुच्छेद 174 में निर्वाचनों के संबंध में उपबंध नहीं हैं । इसके विपरीत निर्वाचन आयोग द्वारा निर्वाचन कराने का अवसर केवल तभी उद्भूत होता है जब सदन का विघटन कर दिया जाता है । भारत संघ, निर्वाचन आयोग और कुछ दलों की ओर से यह दलील दी गई कि निर्वाचन आयोग अनुच्छेद 174(1) में उपदर्शित समय के भीतर सदन का अधिवेशन सुनिश्चित करने के कर्तव्य द्वारा आबद्ध है । उनके अनुसार सदन का अधिवेशन बुलाने की जो अत्यावश्यकता और वांछनीयता है उसे निर्वाचन को मुल्तवी करके विफल नहीं किया जा सकता है । इस प्रकार उनके अनुसार निर्वाचन आयोग को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि निर्वाचन समय पर हों जिससे कि राज्य विधानमंडल का अधिवेशन विहित काल अवधि के भीतर हो सके । दूसरी ओर, कुछ अन्य पक्षकारों के कुछ विद्वान काउंसेलों ने यह निवेदन किया कि छह मास की अवधि विघटित विधानसभा की बाबत लागू नहीं होती है । संविधान के अधीन निर्वाचन आयोग से यह अपेक्षा की गई है कि वह "स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन" कराएगा और जो निर्वाचन स्वतंत्र और निष्पक्ष नहीं है ऐसे

निर्वाचनों को धांधली से या छल से किया हुआ माना जाएगा और इन्हें निर्वाचन ही नहीं माना जा सकता है । उनके अनुसार अनुच्छेद 174 का उपबंध अस्तित्वशील विधानसभा से है न कि ऐसी विधानसभा से जिसका विघटन कर दिया गया है और जिसका अस्तित्व ही समाप्त हो गया है । विद्वान काउंसेलों द्वारा यह इंगित किया गया है कि न तो संविधान में और न ही लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950 (जिसे संक्षेप में लो.प्र. अधिनियम, 1950 कहा गया है) और लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 में विधानसभा का विघटन कर दिए जाने के पश्चात् निर्वाचन कराए जाने के लिए कोई काल अवधि विहित की गई है । भारत संघ, निर्वाचन आयोग और कुछ दलों ने यह दलील दी है कि संविधान की स्कीम और अनुच्छेद 327 में विरचित की गई विधियों के अनुसार यह कल्पना नहीं की जा सकती है कि निर्वाचनों को अनिश्चितकाल के लिए आस्थगित कर दिया जाए । उनके अनुसार तथ्य यह है कि निर्वाचन संविधान के मूलभूत ढांचे का गठन करते हैं और कामचलाऊ मंत्रिपरिषद् या राष्ट्रपति शासन अधिरोपित किया जाना इसका उत्तर नहीं है । उनके अनुसार राष्ट्रपतीय शासन केवल प्रगणित विद्यमान परिस्थितियों में ही अधिरोपित किया जा सकता है न कि अन्यथा । राष्ट्रपति शासन अधिरोपित करने के लिए संसद के दोनों सदनों द्वारा इसका अनुसमर्थन कराया जाना होता है । यह भी निवेदन किया गया कि निर्वाचन आयुक्त को निर्वाचन कराया जाना को सुनिश्चित करना चाहिए न कि निर्वाचन न करायां जाना तथा इस बात के प्रयास किए जाने चाहिएं कि यदि आवश्यक हो तो केन्द्र और राज्य की आवश्यक सहायता लेकर निर्वाचन कराए जाएं और इसीलिए तीसरे प्रश्न को निर्दिष्ट किया गया । अनुच्छेद 174 में "इसके एक सत्र की अंतिम बैठक और आगामी सत्र की प्रथम बैठक के लिए नियत की गई तारीख" में जिस भाषा का प्रयोग किया गया है उसके संदर्भ में यह उल्लेख किया गया कि सदन विघटित नहीं होता है केवल विधानसभा ही विघटित होती है । इसलिए निर्वाचन आयोग अनुच्छेद 324 के अशक्ति का प्रयोग करने के इस कर्तव्य से आबद्ध है कि अनुच्छेद 324 का प्रयोग इस रीति से किया जाए जिससे कि अनुच्छेद 174 के अधीन के आदेश नगण्य न बन जाए या प्रभावहीन न हो ।

132. जहां तक संविधान के भाग 6 के अध्याय 3 का संबंध है, वह संविधान के भाग 5 और अध्याय 3 के समान है और इनमें यथास्थिति, विधानमंडल, विधानसभा और लोकसभा के बीच फर्क किया गया है । अनुच्छेद 79 में यह कहा गया है कि संघ के लिए एक संसद होगी जो राष्ट्रपति और दो सदनों से मिलकर बनेगी और इसके दो सदनों के नाम क्रमशः राज्य सभा और लोकसभा होंगे । जैसा कि ऊपर कहा गया अनुच्छेद 168 के खंड (1) में यह उपबंध किया गया है कि प्रत्येक राज्य के लिए एक विधानमंडल होगा जो राज्यपाल आदि से मिलकर बनेगा । कुछ विद्वान काउंसेलों द्वारा यह निवेदन किया गया कि जहां तक राज्यों का संबंध है वहां पर सदनों को विधानसभा या विधान परिषद् के नाम से जाना जाएगा और जहां संसद के दोनों सदनों का संबंध है उन्हें राज्य सभा और लोकसभा के नाम से जाना जाएगा । उनके अनुसार यह केवल नामावली से संबंधित है और यथास्थिति, विधानसभा या लोकसभा के विघटन पर कोई भी सदन अस्तित्व में नहीं रहता है । यद्यपि, यह अभिवाक् आकर्षक लगता है, किन्तु यह मान्य नहीं है । निर्वाचन कराने के प्रश्न के संबंध में अनुच्छेद 174 के अधीन जो निश्चित समय- सीमा दी गई है निर्वाचन आयोग द्वारा उसका पालन करना कभी-कभी मुश्किल हो जाता है । यदि ऐसे किसी मामले की कल्पना की जाए कि लोकसभा या विधानसभा का छह मास की अवधि के पर्यावसान से पहले यदि विघटन कर दिया जाए, तब इस अनुच्छेद में जो निश्चित समय-सीमा नियत की गई है उसके अनुसार निर्वाचन कराना व्यावहारिकतः असंभव हो जाएगा । कभी-कभी ऐसे मामले भी हो सकते हैं कि दैव कार्यवश निर्वाचन कराना उस समय भी असंभव हो जाए जबकि उसके लिए कार्यक्रम नियत कर दिया गया है । ऐसे मामलों में यदि छह मास की अवधि के पश्चात् निर्वाचन कराए जाते हैं, तो वे अविधिमान्य नहीं होंगे । ऐसे मामलों में निर्वाचन आयोग से असंभव कार्य करने के लिए नहीं कहा जा सकता है । क्या अनुच्छेद 174 आज्ञापक है या नहीं इस प्रश्न का उत्तर यही है ।

133. लोकसभा या विधानमंडल एक स्थायी निकाय है । लोकसभा या विधानसभा का विघटन हो जाने के पश्चात् सदन का अस्तित्व समाप्त नहीं हो जाता है । व्यापक अर्थ में विघटन से सदन को अवखंडन, विच्छेदन या उसे बंधनमुक्त करना अभिप्रेत है । व्यापक संवैधानिक अर्थ में इससे किसी विधानसभा या लोकसभा की बर्खास्तगी

विवक्षित है । कार्यपालिका के कार्य से विघटन होता है और जो विधायी निकाय को खारिज करके साधारण व्यक्तियों के मताधिकार के प्रयोग द्वारा प्रक्रिया आरंभ करती है । इसमें साधारण व्यक्ति ही राज्य के उच्चतम मध्यस्थ होते हैं और वे ही नवीन विधायी निकाय को अस्तित्व में लाते हैं । संविधान के अधीन नियत की गई अवधि के पर्यावसान पर स्वाभाविक रूप से विघटन हो जाता है और कार्यपालिका के कार्य द्वारा विघटन किया जाना एक अलग तरीका है । कार्यपालिका का विधिपूर्ण कार्य विधानमंडल का अस्तित्व समाप्त होने से पहले समय से पहले उसका विघटन कर देता है । हमारा इससे कोई संबंध नहीं है कि क्या कार्यपालिका के ऐसे किसी कार्य का न्यायिक पुनर्विलोकन किया जा सकता है क्योंकि यह एक बिल्कुल ही अलग विषय है ।

134. लोकसभा या विधानसभा का विघटन करने के संबंध में कार्यपालिका जिस अधिकार का प्रयोग करती है उसके प्रयोग की कतिपय शर्तें हैं अर्थात् (i) किसी प्रतिनिधि निकाय जिसका विघटन किया जाना है, का अस्तित्व में होना और (ii) कार्यपालिका का कार्य जिसके लिए एक ऐसा पृथक् और सुभिन्न राज्य अंग विवक्षित है जिसमें विघटन करने की शक्ति निहित है (iii) और परिणामतः निर्वाचन आयोग द्वारा निर्वाचन कराए जाने के पश्चात् नई लोकसभा या विधानसभा का आहूत करना तथा निर्वाचन प्रक्रिया पूरी होने के पश्चात् इसके परिणामों को अधिसूचित करना ।

135. संसद को विघटन करने के संबंध में राज्य के जिस अंग को जो अधिकार दिया गया है उसे अपनी इच्छा को ऐसी रीति से अभिव्यक्त करना चाहिए जोकि संविधान और सुसंगत विधियों के अनुरूप हो । विघटन का प्राथमिक परिणाम यह होता है कि यथास्थिति, लोकसभा या विधानसभा का अस्तित्व विधिक रूप से समाप्त हो जाता है और वे अपने विधायी कृत्य नहीं कर सकते हैं । यथास्थिति, लोकसभा या विधानसभा की समय से पहले ऐसे क्रमभंग से, अन्य बातों के साथ-साथ, ऐसे निकाय के साथ-साथ इसका प्रत्येक सदस्य भी प्रभावित होता है और इसी भांति इसका काम भी, विहित अपवर्जनों, यदि कोई हैं, के अध्यधीन सहसा ही समाप्त हो जाता है । यदि पूर्व सदस्यों की कोई बैठक होती है तो उस बैठक को साधारण नागरिकों की बैठक ही माना जाता है न कि विधानसभा या लोकसभा की विधायी हैसियत में कोई शासकीय सत्र ।

136. निर्वाचनों के परिणाम अधिसूचित कर दिए जाने और सुसंगत विधि के अधीन अधिसूचना जारी कर दिए जाने के पश्चात् जब सदन का अधिवेशन होता है तब वह सम्यक् रूप से गठित होने के पश्चात् एक सजीव निकाय होता है । निकाय के संघटकों में परिवर्तन हो सकता है किन्तु संवैधानिक निकाय जोकि एक स्थायी निकाय होता है पुनः सजीव हो जाता है । इसलिए इस निवेदन में कि अनुच्छेद 174(1) के अधीन नियत काल अवधि विघटित विधानसभा को लागू नहीं होती है ।

137. विघटन के परिणामस्वरूप विधायी निकाय का अंत हो जाता है । इससे ऐसे निकाय की कालावधि का अनिवार्यतः पर्यवसान हो जाता है और उसके पश्चात् एक निकाय, यथास्थिति, विधानसभा अथवा लोकसभा का गठन होता है । दूसरे शब्दों में, सत्तावसान का संबंध सत्र के पर्यवसान से है और इस प्रकार एक और सत्र उस समय तक नहीं होता जब तक विधायी सत्र का अंत एक ही समय में न हो । इसमें मूलभूत अंतर यह है कि विघटन के विपरीत सत्रावसान किसी विधायी निकाय की कालावधि को प्रभावित नहीं करता है और वह एक सत्र से दूसरे सत्र तक चलता रहता है जब तक कि विघटन द्वारा इसका अंत नहीं कर दिया जाता है । विघटन से सदन के कार्यकाल अंतिम रूप से समाप्त हो जाता है । सदन के विघटित होते ही इसे फिर से नहीं बुलाया जा सकता । विघटन के आदेश को वापस लेने और/अथवा पूर्ववर्ती सदन को पुनरुज्जीवित करने की कोई शक्ति नहीं है । परिणामस्वरूप विघटन का प्रभाव आत्यंतिक और पूर्ण होता है । कुछ विद्वान लेखकों द्वारा यह कहा गया है कि विघटन 'संसदीय स्लेट(पट्टिका) पर स्पंज का कार्य करता है' । विघटन के प्रभावस्वरूप विधायी निकाय के कार्यकलापों, उसकी बैठकों और सत्रों का सारभूत रूप में पर्यावसान हो जाता है । विघटित विधायी निकाय के सत्रों और उसकी बैठकों का बार-बार होना बंद हो जाता है और इसका कोई भी आगामी सत्र अथवा प्रथम सत्र नहीं हो सकता है । विधायी निकाय के निर्वाचन के साथ ही एक नवीन अध्याय प्रारंभ होता है । जब तक यह नहीं कर दिया जाता तब तक

अनिवार्यतः उत्तरदायी सरकार अर्थात् सरकार की जिम्मेदारी नहीं रहती है । परिणामतः काल की सीमा नहीं रहती है । 'एक सत्र की अंतिम बैठक' और 'आगामी सत्र की प्रथम बैठक' से संबंधित 'उसके' शब्द का कोई अन्य निर्वचन इसे महत्वहीन बना देगा ।

138. किसी शब्द या अभिव्यक्ति का उस प्रसंग जिसमें इसका प्रयोग किया गया है, के अर्थ का स्रोत महत्वपूर्ण होता है । प्रसंग से उद्भूत सार और तत्व से मात्र उस अर्थ को अधिमान दिया जाना चाहिए जो प्राप्त किया जाना है और जो उस अभिव्यक्ति से संबंधित विधायी स्कीम द्वारा निवारित किया जाना है । यह एक सुस्थिर सिद्धांत है कि कानून का निर्वचन करते समय इसमें प्रयुक्त शब्दों को अलग नहीं पढ़ा जाना चाहिए । उनका सार और तत्व उनके प्रसंग से निकाला जाना चाहिए । अतः कानून के प्रत्येक शब्द की परीक्षा 'प्रसंग' शब्द द्वारा उसी के प्रसंग में की जानी चाहिए । इससे व्यापक अर्थ में उसी कानून के न केवल अन्य सम्मिलित अधिनियमित उपबंध अभिप्रेत है अपितु इसकी उद्देशिका, विधि की वर्तमान स्थिति, अन्य समविषयक कानून और रिष्टी जो कानून द्वारा ठीक की जानी आशयित है, को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए । इस प्रकार निर्वचन करते समय विगत की आधारभूत घटनाओं, वर्तमान की परिस्थितियों और भविष्य के परिणामों का ध्यान रखा जाना चाहिए । न्यायिक निर्वचन शब्दजाल में फंसकर नहीं रह जाना चाहिए क्योंकि जब शब्दों(भाषा) का शून्य में परिशीलन किया जाता है तो उनका प्रवाह ही समाप्त हो जाता है । प्रसंग से ही प्रायः शब्द के अर्थ और उससे निकलने वाले भाव का पता चलता है । उसके विन्यास से उसका आभास सामने आता है और विधानमंडल द्वारा इसे प्रयोग किए जाने के आशय का भी पता चलता है । शब्द निश्चित, पारदर्शी और अपरिवर्तित नहीं होता है । यह जीवन्त विचार का आवरण होता है और उन परिस्थितियों और काल जिनमें इसका प्रयोग किया जाता है, के अनुसार इसका अर्थ और विषयवस्तु में काफी हद तक परिवर्तन होता रहता है । न्यायमूर्ति होम्स ने **टाउने** बनाम **एसनर**[1] वाले मामले में उक्त मताभिव्यक्ति की है ।

139. प्रस्तुत मामले में न्यायमूर्ति जी.पी. सिंह कृत 'स्टेच्यूटरी इंटरप्रिटेशन'(आठवां संस्करण, 2001 पृष्ठ 81-82) से निम्न अवतरण को मार्गदर्शन के लिए उद्धृत करना उपयुक्त रहेगा :–

> "प्रोफेसर एच.ए. स्मिथ के अनुसार 'किसी भी शब्द का पूर्ण अर्थ नहीं होता है क्योंकि शब्दों को शून्य में या किसी प्रसंग के प्रतिनिर्देश के अभाव में परिभाषित नहीं किया जा सकता है' । सदरलैंड का कहना है कि यह बात आधारभूत रूप में गलत है कि शब्दों का स्वयं में अर्थ होता है' और 'शब्दों के गूढ़ अर्थ के प्रतिनिर्देश करते हुए" क्रेस का यह कहना है 'यदि ऐसी कोई बात है तो इसे कानून का निर्वचन करते समय महत्व नहीं दिया जाना चाहिए... ।' किसी कानून में के किसी शब्द या वाक्यांश के अर्थ का अवधारण करते हुए सर्वप्रथम यह प्रश्न किया जाना चाहिए कि 'उस शब्द या वाक्यांश का उक्त कानून में दिए गए उनके प्रसंग का सहज और सामान्य अर्थ क्या है ? जब इसके अर्थ के परिणामस्वरूप किसी ऐसे परिणाम पर पहुंचते हैं जिसकी युक्तियुक्त रूप में यह कल्पना नहीं की जा सकती है कि विधानमंडल का यह आशय था, केवल ऐसी स्थिति में ही उस शब्द या वाक्यांश का कोई अन्य संभावित अर्थ ढूंढना उचित होगा' । जैसा कि पहले देखने में आया, कानून के अर्थान्वयन के प्रसंग से कानून समग्र रूप में, विधि की परिवर्तित स्थिति, समविषयक अन्य कानून, कानून की साधारण व्याप्ति और रिष्टी जो दूर की जानी आशयित है, अभिप्रेत है ।"

140. इस पर संविधान का निर्वचन करते समय न्यायालय का न्यायिक कृत्य पारिभाषिक शब्दावली का नहीं रह जाता है । न्यायालय को लिखत में विद्यमान अन्य बातों के होने और इस संबंध में वर्तमान की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं का भी ध्यान रखना होता है । हमारे जैसे साधारण न्यायालय के लिए अधिकारिता का सुचारू संतुलन आवश्यक है क्योंकि हमें संविधान में यथाअंतर्विष्ट विधि की घोषणा करनी पड़ती है । ऐसा करते हुए न्यायालय यह उचित ही परिलक्षित करता है कि संविधान एक जीवन्त और मूलभूत चीज है जो ऐसे सभी लिखतों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान रखता है जिनका व्यापक और विस्तृत रूप में अर्थान्वयन किया जाना अपेक्षित है । (**मैसर्स गुडईयर**

[1](1917) 245 यू.एस. 418 एम. 425.

इण्डिया लिमिटेड बनाम **हरियाणा राज्य और एक अन्य**[1] और **सिंथेटिक्स एण्ड केमिकल्स लिमिटेड** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[2] वाले मामले दृष्टव्य हैं) ।

141. किसी सांविधानिक दस्तावेज के निर्वचन में शब्दों की अपेक्षा संकल्पनाओं का परिप्रेक्ष्य महत्वपूर्ण होता है और संकल्पनाएं शब्दों की अपेक्षा प्रायः बदलती रहती हैं । संकल्पनाओं के परिवर्तन का महत्व अपने में महत्वपूर्ण होता है और सांविधानिक विवाद्यक शब्दों के विकास की प्रक्रिया को स्वीकार किए बिना उनके मात्र अर्थ को ध्यान में रखकर तय नहीं किए जाते हैं । यह कहना उपयुक्त है कि संविधान का आंशय ब्यौरों को देने की बजाय सिद्धांतों को रेखांकित करना है । (**आर.सी. पौडयाल** बनाम **भारत संघ और अन्य**[3] वाला मामला दृष्टव्य है) ।

142. **पुरुषोतमन नम्बुदिरी** बनाम **केरल राज्य**[4] वाले मामले में इस न्यायालय के संविधान पीठ ने यह मताभिव्यक्ति की :–

"संसद का विघटन कभी-कभी संसद की 'सिविल मृत्यु' कहा जाता है । इल्बर्ट ने 'पार्लियामेंट' नामक अपनी कृति में यह मताभिव्यक्ति की है कि 'सत्रावसान से किसी सत्र (संसद का नहीं) का अवसान अभिप्रेत है';

जहां किसी विधानसभा का जीवनकाल समाप्त हो जाता है और कोई अन्य विधानसभा सम्यक् अनुक्रम में निर्वाचित होती है, वहां उस विधानसभा की कालावधि में कदापि निरंतरता नहीं रहती है ।"

143. संविधान सभा की बहसों (अनुच्छेद 153-वर्तमान में अनुच्छेद 174 से) यह भी स्पष्ट है कि विधानसभा जो विघटित नहीं हुई है, की लम्बी अवधि के दौरान उसके बार-बार अधिवेशन होने पर बल दिया गया है ।

144. में कृत 'पार्लियामेन्ट्री प्रैक्टिस' का निम्न पैरा उक्त मत को बल प्रदान करता है :–

"संसद का सत्र उसके अधिवेशन, चाहे सत्रावसान या विघटन के पश्चात् हो, के मध्य की कालावधि होता है और उसका सत्रावसान....... । किसी सत्र के दौरान कोई भी सदन अपनी स्वप्रेरणा से ऐसे समय तक के लिए स्थगित हो सकता है जैसा कि वह चाहे । संसद के सत्रावसान और नए सत्र की अपने पुनः अधिवेशन होने की मध्य की अवधि 'विश्रान्ति' कहलाती है और किसी भी सदन के स्थगन और उसके अधिवेशन के पुनः होने के मध्य की अवधि साधारणतः 'स्थगन' कहलाती है ।

सत्रावसान सत्र का पर्यवसान करता है जबकि स्थगन एक और उसी सत्र के दौरान व्यवधान (क्रमभंग) होता है ।"

145. इस बिन्दु से संबंधित **के. के. आबू** बनाम **भारत संघ**[5] वाले मामले में केरल उच्च न्यायालय का सीधा विनिश्चय है । इसमें, अन्य बातों के साथ-साथ, यह मताभिव्यक्ति की गई है :–

"विधानमंडल अधिवेशन के लिए केवल तभी आहूत की जा सकती है यदि वह तत्समय अस्तित्व में है । विघटित विधानमंडल को संविधान के अनुच्छेद 174 के अधीन अधिवेशन के लिए आहूत नहीं किया जा सकता है । अतः प्रश्न यह नहीं है कि विधानमंडल को अधिवेशन के लिए आहूत किया जाना चाहिए या उसे आहूत किया जा सकता है अपितु प्रश्न यह है कि क्या राष्ट्रपति महोदय के आदेश द्वारा किया गया इसका विघटन सांविधानिकतः विधिमान्य है ।"

146. विचार सुआधारित है ।

---

[1] ए. आई. आर. 1990 एस. सी. 781.
[2] ए. आई. आर. 1990 एस. सी. 1927.
[3] ए. आई. आर. 1993 एस. सी. 1804.
[4] [1962] सप्ली.1 एस. सी. आर. 753.
[5] ए. आई. आर. 1965 केरल 229.

147. संविधान के अनुच्छेद 174 जिसे 1951 में संशोधित किया गया, पर दृष्टिपात करने से स्थिति पूर्णतः स्पष्ट हो जाती है । असंशोधित अनुच्छेद 174 इस प्रकार है :–

*"174(1) राज्य के विधानमंडल को सदन या उसके सदनों को प्रति वर्ष कम-से-कम दो बार अधिवेशन के लिए आहूत किया जाएगा और उनके एक सत्र के अंतिम अधिवेशन और आगामी सत्र के प्रथम अधिवेशन के लिए नियत तारीख के बीच छह मास का अंतर नहीं होगा ।

(2) खंड (1) के उपबंधों के अध्यधीन राज्यपाल समय-समय पर –

(क) सदन का या किसी सदन को ऐसे समय और स्थान पर जो वह ठीक समझे, अधिवेशन के लिए आहूत कर सकेंगे;

(ख) सदन का या किसी भी सदन का सत्रावसान कर सकेंगे ।"

148. इस निष्कर्ष के आलोक में कि अनुच्छेद 174 के निबंधन विघटित विधानसभा को लागू नहीं होते हैं(इसी भांति अनुच्छेद 85 के अधीन लोकसभा के मामले में), दूसरा प्रश्न जिस पर विचार किया जाना है वह यह है कि क्या ऐसे मामलों में निर्वाचन कराए जाने के लिए काल-सीमा नियत की जा सकती ? कुछ विद्वान काउंसेल द्वारा स्पष्टतः यह निवेदन किया गया है कि संविधान में किसी प्रकार की काल-सीमा का कोई उपबंध नहीं है और न ही लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम में ऐसा कुछ है ।

149. क्या यह कहा जा सकता है कि संविधान निर्माताओं का यह आशय था कि किसी निर्वाचित निकाय की कालावधि नियत अवधि की समाप्ति पर समाप्त हो जाती है और निर्वाचन कराए जाने के लिए काल-सीमा आवश्यक है जबकि समय पूर्व विघटन के मामले में ऐसा नहीं है ?

150. लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 14 और 15 में क्रमशः लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के साधारण निर्वाचन के लिए अधिसूचना का वर्णन है । यह स्पष्टतः अनुबद्ध है कि निर्वाचन कराए जाने की अधिसूचना उस तारीख से जिसको सदन की अवधि क्रमशः अनुच्छेद 83 के खंड(2) या अनुच्छेद 172 के खंड(1) में दिए गए उपबंधों के अधीन समाप्त हो जाएगी, से छह मास पूर्व किसी भी समय जारी की जा सकती है । इसका स्पष्ट प्रयोजन यह है कि राष्ट्रपति या राज्यपाल, यथास्थिति, निर्वाचक मंडल से नियमों, अधिनियम और तद्धीन किए गए आदेशों के उपबंधों के अनुसार सदस्यों का निर्वाचन ऐसी तारीखों पर जिनकी निर्वाचन आयोग द्वारा सिफारिश की जाए, के लिए कह सकते हैं । ये तारीखें इस प्रकार नियत की जाएंगी कि वे अवधि की समाप्ति के बहुत पहले न हों । यहां भी निहित उद्देश्य यह है कि निर्वाचित सदस्य पूर्ण कालावधि तक बने रहेंगे । दलों के विद्वान काउंसेल जिन्होंने निवेदन किए द्वारा यह समुचित रूप में स्वीकार किया गया है कि ऐसी कोई काल-सीमा नियत नहीं है कि सदैव उत्तरदायी सरकार ही हो । हमारे संविधान में लोकतंत्रात्मक गणराज्य की स्थापना की गई है जैसा कि संविधान की उद्देशिका से उपदर्शित है और सरकार की मंत्रिमंडलीय प्रणाली को साधारणतया उत्तरदायी सरकार कहा जाता है । हम यहां यह देख सकते हैं कि लोकतंत्र में संपूर्ण प्रभुत्व की शक्ति सामूहिक रूप से तीन अंगों अर्थात् कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका में निहित है । लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 14 में यह

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :–

"174(1) The House or Houses of the Legislature of the State shall be summoned to meet twice at least in every year and six months shall not intervene between their last sitting in one session and the date appointed for their first sitting in the next session.

(2) Subject to the provisions of clause(1), the Governor may from time to time--

(a) summon the House or either House to meet at such time and place as he thinks fit;

(b) prorogue the House or Houses."

आदिष्ट है कि विद्यमान सदन की अवधि की समाप्ति पर या उसके विघटन पर नई लोकसभा गठित किए जाने के प्रयोजनार्थ साधारण निर्वाचन कराए जाएंगे । यही बात धारा 15 की पृष्ठभूमि में विधानसभा के मामले में है । जब नियत कालावधि की समाप्ति पर निर्वाचन होते हैं, तो निर्वाचन आयुक्त पहले से ही तारीखों से अवगत होता है और तदनुसार निर्वाचन का कार्यक्रम नियत कर सकता है । समस्या तब उत्पन्न होती है जब समय पूर्व विघटन किया जाता है । ऐसी स्थिति में निर्वाचन आयुक्त को विघटन के पश्चात् ही पता चलता है । अतः वह ऐसे मामले में पहले से कोई कार्यक्रम नियत नहीं कर सकता है । दीर्घावधि तक निर्वाचन न कराए जाने का अंततोगत्वा परिणाम यह होता है कि केयरटेकर (कामचलाउ) सरकार कार्य करती रहती है जोकि उत्तरदायी सरकार के सिद्धांतों के विरुद्ध है । केयरटेकर सरकार असम्यक् दीर्घावधि तक निर्वाचन आस्थगित करने का हल नहीं है । जैसा कि ऊपर देखा गया, अदृश्य आकस्मिकताओं के कारण नवीन लोकसभा या विधानसभा गठित करना असंभव हो सकता है । निर्वाचन का आस्थगित किया जाना इस अपेक्षा का एक अपवाद है कि निर्वाचन यथाशीघ्र जहां तक साध्य हो होने चाहिएं । सदन आहूत किए जाने की अपेक्षा अपने में पूर्ण है क्योंकि अस्तित्वशील सदन ही आहूत किया जा सकता है । अतः समय पूर्व विघटन के मामले में भी निर्वाचन आयोग का प्रयास समय पर निर्वाचन कराए जाने का होना चाहिए ताकि उत्तरदायी सरकार पदभार ग्रहण कर सके । पुनरावृत्ति करते हुए यह कहा जा सकता है कि जहां स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन कराया जाना संभव नहीं है, वहां अपरिहार्य विलम्ब हो सकता है । किन्तु निर्वाचन आस्थगित किए जाने के कारणों का संबंध दैविक कार्यों से होना चाहिए न कि सामान्यतः मनुष्यकृत कार्यों से । निर्वाचन न कराए जाने के विभिन्न कारण हो सकते हैं ।

151. इस प्रश्न का अवधारण करने के लिए कि क्या कोई उपबंध आज्ञापक है अथवा निदेशात्मक, उस उपबंध की विषयवस्तु, उसका महत्व, अधिनियम द्वारा प्राप्त किए जाने के लिए आशयित साधारण उद्देश्य से उस उपबंध का यह संबंध कि क्या यह उपबंध निदेशात्मक है या आज्ञापक है, पर विचार किया जाना चाहिए । अर्थान्वयन किए जाने वाले उपबंध की संपूर्ण व्याप्ति की सावधानीपूर्वक परीक्षा करके विधानमंडल के वास्तविक आशय का पता लगाना न्यायालयों का कर्तव्य है । प्रत्येक विधि के प्रारंभ की कुंजी विधि के कारण और उसके उद्देश्य होते हैं और इस संबंध में विधि की असमर्थता के आशय, विधि में अभिव्यक्त विधि निर्माताओं के आशय पर संपूर्णतः विचार किया जाना चाहिए । (**ब्रैट** बनाम **ब्रैट**[1] वाला मामला दृष्टव्य है) ।

152. यथाशीघ्र निर्वाचन पूरा करने की आवश्यकता संविधान में लोक और राज्य हित में इस बात को ध्यान में रखते हुए आदिष्ट है ताकि देश का शासन पंगु न बनने पाए ।

153. निर्वाचन कराए जाने की असंभावना निर्वाचन आयोग के विरुद्ध कोई कारण नहीं है । विधि की असमर्थता की क्षम्य है की सूक्ति इस एक अन्य सूक्ति से संबद्ध है कि विधि असंभव करने के लिए विवश नहीं करती है । असमर्थता क्षम्य है से यह अभिप्रेत है कि, जब विधि की किसी आज्ञापक बात का पालन करना आवश्यकतः और पूर्णतः कर पाना असंभव है तो यह क्षम्य है । विधि किसी व्यक्ति को ऐसा करने के लिए बाध्य नहीं करती है जिसे कर पाना उसके लिए संभव नहीं है । "जहां विधि किसी कर्तव्य या प्रभार को सृजित करती है और व्यक्ति इसे कर पाने में असमर्थ है, बिना अपनी किसी त्रुटि के और उसके पास इसका कोई उपचार नहीं है, तो विधि में साधारणतः उसे क्षमा किया जा सकता है ।" अतः जब यह प्रतीत हो कि किसी कानून द्वारा विहित औपचारिकताओं का पालन ऐसी परिस्थितियों द्वारा असंभव हो गया है जिन पर हितबद्ध व्यक्तियों का कोई नियंत्रण नहीं है अर्थात् दैविक कार्य, तो ऐसी परिस्थितियों को एक विधिमान्य बहाना माना जाएगा । जहां दैविक कार्यवश किसी कानून के उपबंधों का पालन नहीं किया जा सकता है, वहां वह कानूनी उपबंध दैविक कार्यवश अकस्मात् उत्पन्न असम्भाव्यता के कारण अपने आज्ञापक स्वरूप से वंचित नहीं हो जाता है । (ब्रूम कृत लीगल मैक्सिम्स, दसवां संस्करण, पृष्ठ 1962-63 और क्रेस कृत स्टेच्यूट ला, छठा संस्करण, पृष्ठ 268 दृष्टव्य है) । इन पहलुओं पर इस न्यायालय द्वारा **1974 के विशेष**

---

[1] (1826) 3 एडम्स 210, पृष्ठ 216.

निर्देश सं0 1[1] में स्पष्टतः प्रकाश डाला गया । हितबद्ध व्यक्तियों द्वारा ऐसी स्थितियां उत्पन्न की जा सकती हैं ताकि निर्वाचन न होने पाए और केयरटेकर सरकार पद पर बनी रहे । यह निश्चित ही संविधान की स्कीम के विरुद्ध है और इससे संविधान की आधारभूत संरचनाओं का ह्रास होगा ।

154. उत्तरदायी सरकार में उत्तम कार्य-प्रणाली की व्यवस्था होती है । लोकतंत्र में केयरटेकर सरकार का कोई महत्व नहीं होता क्योंकि यह अपने में तदर्थ सरकार होती है जो कोई नीतिगत विनिश्चय नहीं कर सकती है । उस समय बड़ी विचित्र स्थिति उत्पन्न हो सकती है जब कैबिनेट मंत्रियों को यह विश्वास है कि वे विश्वास मत प्राप्त करने में सफल नहीं होंगे और इस प्रकार संविधान के अनुच्छेद 174 के अनुसार छह मास की अवधि की समाप्ति से कुछ ही दिन पूर्व भली-भांति यह जानते हुए कि निर्वाचन तत्काल नहीं कराए जा सकते हैं और केयरटेकर सरकार बनी रहेगी, विघटन की मांग करते हैं । एक और काल्पनिक स्थिति पर विचार किया जा सकता है जब स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन संभव न हों और केयरटेकर सरकार मनुष्यकृत स्थितियों के कारण पद पर बनी रहती है । ऐसी स्थिति में निर्वाचन आयुक्त को स्थिति से निपटने और भावनाओं को समझने तथा निर्वाचन करने के सभी संभव प्रयास करने का कर्तव्य प्राप्त है ताकि उत्तरदायी सरकार पदासीन हो सके । तब प्रश्न यह उठता है कि जब कोई विधानसभा या लोकसभा विघटित कर दी जाती है और निर्वाचन तत्काल कराए जा सकते हैं ताकि विघटित विधानसभा या लोकसभा की अंतिम अधिवेशन और उपर्युक्त में से किसी के सम्यक् रूप में गठित के प्रथम अधिवेशन के मध्य की छह मास की अवधि समाप्त न होने पाए से उत्पन्न गतिरोध को कैसे टाला जा सकता है । इसका एक हल यह हो सकता है कि आपात सत्र जिसे 'अधूरा' (लेम डक) सत्र कहा जाता है बुलाया जा सकता है और इसके तत्काल पश्चात् विघटन अधिसूचित किया जा सकता है । ऐसी स्थिति में निर्वाचन आयुक्त को इस बात पर सर्वोपरि रूप में विचार करते हुए कि निर्वाचन स्वतंत्र और निष्पक्ष हों, निर्वाचन कराने का पर्याप्त समय मिल जाता है और इस प्रकार विघटन की तारीख से छह मास के भीतर सम्यक् रूप में गठित निर्वाचित निकाय का अगला सत्र कार्य करने लगता है । व्यावहारिक रूप में तब छह मास की अवधि विघटन की तारीख से प्रारंभ होगी ।

155. स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन लोकतंत्र के लिए अनिवार्य है । संविधान की स्कीम में यह स्पष्टतः उल्लेख है कि दो भिन्न सांविधानिक प्राधिकारी निर्वाचन और सत्र आहूत करने के लिए बनाए गए हैं । हमारे समक्ष यह स्पष्ट किया गया कि वस्तुतः निर्वाचन ऐसी स्थिति के सिवाय जब विलम्ब के अपरिहार्य कारण हों, विहित अवधि पूरा करने पर या समय पूर्व विघटन होने पर विघटन की तारीख से छह मास की अवधि के भीतर पूरे हो जाने चाहिएं । निर्वाचन आयुक्त एक उच्च सांविधानिक प्राधिकारी है जिसे स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन सुनिश्चित करने और निर्वाचन प्रक्रिया की शुद्धता को बनाए रखने का कर्तव्य सौंपा गया है । उद्देश्य और प्रयोजन को कार्यान्वित करने के लिए सभी आनुषंगिक और समनुषंगी शक्तियों को रेखांकित करना आवश्यक है । विहित अवधि की समाप्ति पर होने वाले निर्वाचनों को लागू छह मास की अवधि समय पूर्व विघटन के पश्चात् होने वाले निर्वाचनों को अनिवार्यतः लागू होगी । वास्तव में यह ऐसे विरल आपवादिक मामलों, जो तथ्यपरक स्थिति (दैविक कार्य सदृश) के कारण उत्पन्न होते हैं और जिनमें निर्वाचन कराया जाना असंभव हो जाता है, के अध्यधीन है । तथापि, निर्वाचन कराए जाने को आस्थगित करने के आशय से मनुष्यकृत स्थिति से कड़ाई से निपटा जाना चाहिए और यह साधारणतः छह मास की अवधि से परे निर्वाचन आस्थगित करने का आधार नहीं होना चाहिए जिसमें छह मास की अवधि का प्रारंभिक बिन्दु विघटन की तारीख होगी । **दिग्विजय मोटे** बनाम **भारत संघ और अन्य**[2] वाले मामले में यह मताभिव्यक्ति की गई कि समय पर निर्वाचन जोकि स्वतंत्र और निष्पक्ष नहीं है, लोकतंत्र के लिए घातक है और यह वस्तुनिष्ठ रूप में इस बात का निर्धारण करने से संबंधित कि क्या स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन संभव हैं के अंतिम उत्तरदायित्व को विफल बना देता है । स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन के मार्ग में बाधा उत्पन्न करने का कोई भी मनुष्यकृत प्रयास लोकतंत्रात्मक प्रतिमानों के विरुद्ध है और इनसे आशयित स्रोतों से संसाधन जुटाकर और छह मास की अवधि के भीतर निर्वाचन कराकर निपटा जा सकता है ।

---

[1] [1975] 1 एस. सी. आर. 504.

[2] (1993) 4 एस. सी. सी. 175.

156. यह दलील देने के लिए कि निर्वाचन कराए जाने के लिए छह मास की अवधि स्वयं अनुच्छेद 174 में दी गई है, संविधान के अनुच्छेद 164(4) के प्रतिनिर्देश किया गया । यह उल्लेख किया जा सकता है कि जैसाकि इस न्यायालय ने **एस. आर. चौधरी** बनाम **पंजाब राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में मताभिव्यक्ति की कि इन उपबंधों का वस्तुतः निर्वाचन कराए जाने से कोई संबंध नहीं है और ये विहित समय के भीतर निकाय निर्वाचित कराए जाने की अपेक्षा से प्राथमिकतः संबंधित हैं । उक्त उपबंध में ऐसी स्थिति अनुध्यात है जब किसी अस्तित्वशील विधानमंडल का कोई मंत्री निर्वाचित होना है और इसमें अनस्तित्वशील सदन का कोई उल्लेख नहीं है और इस पृष्ठभूमि में अनुच्छेद 174 से कोई लेना-देना नहीं है ।

157. निर्वाचन आयोग की ओर से इस न्यायालय के समक्ष किए गए निवेदनों के कारण द्वितीय प्रश्न का वास्तव में कोई महत्व नहीं रह जाता है । जहां तक अनुच्छेद 356 लागू होने का संबंध है, यद्यपि निर्वाचन आयोग के आदेश में ऐसी स्थिति को लागू करने की संभावना का विनिर्दिष्टतः उल्लेख है, इस न्यायालय के समक्ष किए गए लिखित निवेदनों और तर्कों में इस बात का कोई उल्लेख नहीं किया गया और हमारे विचार में यह ठीक ही है । जहां तक कालावधि का संबंध है, अनुच्छेद 174 के मात्र अननुपालन से अनुच्छेद 356 स्वतः लागू नहीं हो जाता है । यह स्पष्ट किया गया है कि निर्वाचन आयुक्त का आदेश ही आधार है न कि वे बातें जो बाद में स्पष्ट करने के लिए शपथपत्र द्वारा या निवेदन करके कही गई है । रियायत को दृष्टिगत करते हुए जोकि हमारे अनुसार सुआधारित है, हम प्रश्न पर विस्तार से विचार करना उचित नहीं समझते हैं । कुछ विद्वान कांउसेल द्वारा यह निवेदन किया गया कि निर्वाचन आयोग का आदेश अन्यथा अनुच्छेद 356 लागू किए जाने का मामला बनाता है । हमारा इससे कोई संबंध नहीं है क्योंकि यह निर्देश उस समय अनुच्छेद 356 को लागू किए जाने के संबंध में है जब अनुच्छेद 174 की अपेक्षा पूरी न हो । **के. एन. राजगोपाल** बनाम **तिरु एम. करुणानिधि**[2] वाले मामले में इस न्यायालय के संविधान न्यायपीठ ने यह मताभिव्यक्ति की :–

> "........संविधान के अनुच्छेद 356 में राज्य के सांविधानिक तंत्र की विफलता की बाबत उपबंध किए गए हैं । किन्तु, जब कोई विधानसभा विघटित कर दी जाती है तब अनुच्छेद 356 के अंतर्गत सांविधानिक तंत्र विफल नहीं हो जाता है ।"

इसी प्रकार की मताभिव्यक्ति **अरुण कुमार राय चौधरी** बनाम **भारत संघ**[3] वाले मामले में हममें से एक (माननीय न्यायमूर्ति वी. एन. खरे जैसे कि वह तत्समय थे) द्वारा की गई । न्यायाधीश महोदय ने सारगर्भित रूप से स्थिति इस प्रकार स्पष्ट की :–

> "यह प्रश्न यू. एन. आर. राव **बनाम** इन्दिरा गांधी [(1971) 2 एस. सी. सी. 63] और तिरु के. एन. राजगोपाल **बनाम** एम. करुणानिधि [(1972) 4 एस. सी. सी. 733] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के समक्ष विचारार्थ आया । उच्चतम न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 163 और 164 के साथ-साथ अनुच्छेद 74 और 75 का निर्वचन करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि यदि सदन विघटित हो जाता है, तो भी मंत्रिपरिषद् बनी रहती है । यह विनिश्चय हमारे समक्ष के मामले को पूर्णतः लागू होते हैं । इन विनिश्चयों का अनुसरण करते हुए हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि उत्तर प्रदेश राज्य के राज्यपाल ने विधानसभा विघटित कर दी और विधानसभा गठित किए जाने के लिए नए सिरे से मतदान कराए जाने के लिए निदेश जारी कर दिए, तो भी मंत्रिपरिषद् बनी रही । तथापि संविधान के अनुच्छेद 356 के अर्थान्तर्गत सांविधानिक तंत्र विफल नहीं होने के कारण, यह दलील कि राष्ट्रपति महोदय को सरकार चलाए जाने के लिए राज्य में राष्ट्रपति शासन की घोषणा कर देनी चाहिए, मंजूर की जाती है ।"

---

[1] (2001) 7 एस. सी. सी. 126.
[2] (1972) 4 एस. सी. सी. 733.
[3] ए. आई. आर. 1992 इलाहाबाद 1.

जब अनुच्छेद 356 का आश्रय लिया जा सकता है ऐसी स्थितियों से निपटने के लिए **एस. आर. बोम्मई** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है । निम्न मताभिव्यक्तियों से स्थिति अति सारतः स्पष्ट हो जाती है :–

"........अनुच्छेद 356 यद्यपि आपात उपबंध है, यह सत्य है, फिर भी यह अनुच्छेद 352 द्वारा अनुध्यात आपात से गुणात्मक रूप से भिन्न है या इसी संदर्भ में अनुच्छेद 360 में अनुध्यात वित्तीय आपात स्थिति से भिन्न है । निस्संदेह किसी राज्य में सांविधानिक तंत्र का ठप्प हो जाना, आपात की स्थिति को उत्पन्न करता है । आपात से एक ऐसी स्थिति अभिप्रेत है जो सामान्य नहीं है, ऐसी स्थिति जो शीघ्र उपचारात्मक कार्रवाई की अपेक्षा करती है । अनुच्छेद 356 राष्ट्रपति को अनुच्छेद 355 द्वारा उन पर अधिरोपित बाध्यता का निर्वहन करने के लिए आपवादिक मामलों में प्रयोग किए जाने के लिए एक शक्ति प्रदान करता है । यह, संविधान की संरक्षा और परिरक्षण के लिए, उनकी शपथ से संगत अध्युपाय है । वह अनुच्छेद 356 द्वारा अनुध्यात स्थिति में इस शक्ति का प्रयोग करने को उतने ही आबद्ध हैं जितने कि वे जहां ऐसी स्थिति वास्तव में उत्पन्न नहीं हुई है, इसका प्रयोग न करने को आबद्ध हैं ।"

इसके अतिरिक्त यह भी मत व्यक्त किया गया है :–

"........वह अपनी शक्तियों का प्रयोग मुख्यमंत्री की अध्यक्षता वाली मंत्रिपरिषद् की सहायता और सलाह से करता है (अनुच्छेद 163) । वह अपनी पूरी योग्यता से संविधान और विधि का परिरक्षण, संरक्षण और प्रतिरक्षण करने के लिए अनुच्छेद 159 द्वारा विहित शपथ को लेता है । यह वह बाध्यता है जो उससे अपने राज्य की सरकार के कृत्यों और लोपों की, राष्ट्रपति को रिपोर्ट करने की अपेक्षा करती है जो उसके अनुसार ऐसी स्थिति उत्पन्न कर रहे हैं या जिन्होंने ऐसी स्थिति उत्पन्न की है, जिसमें राज्य का शासन संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता । वस्तुतः यह उसका अपनी स्वयं की सरकार के विरुद्ध रिपोर्ट करने का मामला होगा किन्तु यह उसके दो ताज पहनने का मामला हो सकता है, एक राज्य सरकार के अध्यक्ष के रूप में, जिसका कर्तव्य संविधान का परिरक्षण, संरक्षण और प्रतिरक्षण करना है (देखिए -- **शमशेर सिंह बनाम** पंजाब राज्य (1974) 2 एस. सी. सी. 831, पृष्ठ 849) । चूंकि वह अनुच्छेद 356(1) द्वारा अनुध्यात प्रकृति की कार्रवाई को स्वयं नहीं कर सकता, इसलिए वह राष्ट्रपति को मामला रिपोर्ट करता है और यह राष्ट्रपति के लिए है कि उक्त रिपोर्ट के आधार पर या किसी अन्य सूचना जो उसे अन्यथा मिल सकती है, के आधार पर इस बाबत अपना समाधान करे कि अनुच्छेद 356(1) द्वारा अनुध्यात प्रकृति की स्थिति उत्पन्न हो गई है....... ।"

158. तृतीय प्रश्न उपर्युक्त मताभिव्यक्ति की पृष्ठभूमि में अनुच्छेद 174 की व्याप्ति की परिधि के बारे में विचार किए जाने से संबंधित है । यह निर्वाचन कराए जाने से संबंधित नहीं है । अतः राज्य का नियंत्रण या सहायता की ईप्सा करने से संबंधित प्रश्न उत्पन्न नहीं होता है । तथापि, निर्वाचन आयोग और सरकारों (केन्द्रीय और अथवा राज्य) की स्वतंत्र, निष्पक्ष निर्वाचन कराए जाने में सुपरिभाषित भूमिका है । इस न्यायालय द्वारा विभिन्न मामलों अर्थात् **भारत का निर्वाचन आयोग** बनाम **हरियाणा राज्य**[2], **भारत का निर्वाचन आयोग** बनाम **भारत संघ और अन्य**[3] और **भारत का निर्वाचन आयोग** बनाम **तमिलनाडु राज्य और अन्य**[4] वाले मामलों में मापदंड अधिकथित किए गए हैं । कुछ सुसंगत मताभिव्यक्तियों की अवेक्षा की जा सकती है । उपर्युक्त तमिलनाडु वाले मामले में यह मताभिव्यक्ति की गई :–

"भारत का निर्वाचन आयोग एक उच्च सांविधानिक प्राधिकारी है जिसे स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन तथा निर्वाचन प्रक्रिया की शुद्धता सुनिश्चित करने का कृत्य और कर्तव्य सौंपा गया है । उसे सांविधानिक उद्देश्य और प्रयोजनों को कारगर बनाने की समस्त आनुषंगित और समनुषंगी शक्तियां भी प्राप्त हैं । आयोग की

---

[1] [1994] 3 उम. नि. प. 343 = (1994) 3 एस. सी. सी. 1.

[2] [1984] 3 एस. सी. आर. 554.

[3] (1995) सप्ली. 3 एस. सी. सी. 643.

[4] (1995) सप्ली. 3 एस. सी. सी. 379.

व्यापक शक्तियां उसके उच्च सांविधानिक कृत्य हैं जिनका वह निर्वहन करता है । हमारे विशाल देश में स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन सुनिश्चित करने की प्रक्रिया बड़ी विशद है । किसी विशिष्ट समय किसी विशिष्ट निर्वाचन क्षेत्र में विधि-व्यवस्था की स्थिति और उसकी उपचारी अपेक्षाओं से संबंधित मतभेद होने स्वाभाविक हैं । तथापि, निर्वाचन आयोग की मांगों को पूर्णतः पूरा करने की बाबत केन्द्रीय सरकार के संसाधनों पर अंतर्निहित परिसीमाएं हो सकती हैं । सुरक्षा तंत्र की व्यापकता के निर्धारण से संबंधित भी पुनः वास्तविक मतभेद हो सकते हैं । ऐसी स्थितियों की जटिलताओं और उनमें अंतर्निहित विवशताओं के कारण निर्वाचन आयोग और राज्य और केन्द्र दोनों सरकारों के कृत्यों में सामंजस्य होना अति आवश्यक है । यदि परस्पर वैचारिक मतभेद है, तो इन्हें तय करने का उपाय अवश्य ढूंढ़ा जाना चाहिए । विधि-व्यवस्था से संबंधित निर्वाचन आयोग का आकलन और स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन सुनिश्चित किए जाने से संबंधित स्थितियों से निपटने के लिए तंत्र के स्वरूप और पर्याप्तता को, प्रथम दृष्टया, महत्त्व दिया जाना चाहिए । तथापि, संसाधन आड़े आ सकते हैं । इस प्रकार की स्थिति से पारस्परिक विचार-विमर्श द्वारा निपटा जाना चाहिए और इसे जनता के समक्ष वाक्युद्ध नहीं बनाया जाना चाहिए क्योंकि यह एक स्वस्थ लोकतंत्र के हित में नहीं है । इन मतभेदों को दूर करने के लिए निर्वाचन आयोग और संघ सरकार को परस्पर मिल-बैठकर एक स्वीकार्य समन्वय तंत्र का पता लगाना चाहिए ।"

159. संक्षेप में निर्देश में उपवर्णित प्रश्नों का उत्तर इस प्रकार दिया जाता है :–

1. जहां तक दो सत्रों के बीच की कालावधि का अस्तित्वशील विधानसभाओं न कि विघटित विधानसभाओं से संबंध है, अनुच्छेद 174 के उपबंध आज्ञापक प्रकृति के हैं । अनुच्छेद 174 और अनुच्छेद 324 विभिन्न क्षेत्रों में प्रवर्तित होते हैं । अनुच्छेद 174 में निर्वाचनों का उल्लेख नहीं है जोकि अनुच्छेद 324 के अधीन निर्वाचन आयोग का प्राथमिक कृत्य है । अतः एक का दूसरे के समक्ष झुकने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है । ऊपर वर्णित रीति में दोनों को समरसतापूर्वक कार्य करना चाहिए ।

2. अनुच्छेद 174 का संबंध विघटित विधानसभा से नहीं है । इसी भांति अनुच्छेद 85 के अधीन लोकसभा के संबंध में भी यही स्थिति है । मात्र इस कारण कि अनुच्छेद 174 के अधीन नियत समय कार्यक्रम नहीं अपनाया जा सकता है, यह अपने में अनुच्छेद 356 को प्रवर्तन का आधार नहीं हो सकता है ।

3. चूंकि अनुच्छेद 174 में निर्वाचन की चर्चा नहीं है, निर्वाचन आयुक्त द्वारा केन्द्र या राज्य सरकारों से सहायता, मदद या सहयोग लेने या निर्वाचन कराए जाने के लिए उनके संसाधनों को लेने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है । इसके प्रतिकूल अनुच्छेद 324 के प्रभावी प्रवर्तन के लिए निर्वाचन आयोग स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन कराया जाना सुनिश्चित करने के लिए ऐसा कर सकता है । इस प्रश्न का कि क्या स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन कराया जाना संभव है या नहीं आकलन सभी सुसंगत पहलुओं पर विचार करते हुए निर्वाचन आयोग द्वारा वस्तुनिष्ठ रूप से किया जाना चाहिए । निर्वाचन कराए जाने के प्रयास होने चाहिएं न कि निर्वाचन कराया जाना आस्थगित करने के ।

निर्देश का तदनुसार उत्तर दिया जाता है ।

वि./मदन

MGIPMRND—275LAW—03.05.2004.